सितंबर, 2020
I.S.S.N. : 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग, प्रभारी, वि.सा.प्र.

श्री एस. आर. ढलेटा,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं
विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु
गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्‌यालय

श्री ए. के. अवस्थी,
सेवानिवृत्त प्रोफेसर एवं डीन, विधि
संकाय लखनऊ विश्वविद्‌यालय, लखनऊ

श्री एल. आर. सिंह,
प्रोफेसर एवं डीन, इलाहाबाद
विश्वविद्‌यालय, इलाहाबाद

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

श्री अविनाश शुक्ला,
संपादक

श्री असलम खान,
संपादक

सहायक संपादक : श्री पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

ISSN 2457-0478

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 125/-

वार्षिक : ₹ 1,300/-

© 2020 भारत रुरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रधान संपादक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्‌वारा प्रकाशित तथा.................................. द्‌वारा मुद्रित ।

आई.एस.एस.एन. 2457-0478

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितम्बर, 2020 अंक - 9

प्रधान संपादक
डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय
संपादक
अविनाश शुक्ला

सत्यमेव जयते

विधि साहित्य प्रकाशन

(2020) 2 सि. नि. प.

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

Online selling of law Patrikas/Books is available on
Website ➡ https://bharatkosh.gov.in/product/product

विक्रय कार्यालय : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001.
दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in

संपादकीय

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका प्रतिमाह आपके अवलोकनार्थ उच्च न्यायालयों द्वारा पारित प्रतिवेद्य निर्णय, जो अधिवक्ताओं, विधि छात्रों, न्यायाधीशों और अकादमीशियनों के लिए महत्वपूर्ण होते हैं, का प्रकाशन करता है । आप लोगों से प्राप्त सुझावों के आधार पर हमको अपनी पत्रिका की गुणवत्ता सुधारने और अपने कार्य को और अधिक निखारने की शक्ति प्राप्त होती है । कृपया अपने अमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराते रहें और हमारा मार्गदर्शन करते रहें ।

इस अंक के माध्यम से मैं आपका ध्यान माननीय इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा **राहुल कुमार सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** (2020) 2 सि. नि. प. 253 वाले मामले में संविधान के अनुच्छेद 32 और 136 के अधीन फाइल की गई जनहित याचिका से संबंधित निर्णय की ओर आकर्षित करना चाहता हूं । इस मामले में याची ने जनहित याचिका फाइल करते हुए जनोपयोगी भूमि पर किए जा रहे अवैध अतिक्रमण/निर्माण को हटाए जाने के प्रयोजनार्थ सामान्य क्षेत्रीय लोगों की परेशानी के प्रश्न को उठाया । माननीय उच्च न्यायालय ने विचार व्यक्त किया कि रास्तों, नालों इत्यादि पर अतिक्रमण हटाए जाने के मामलों में जनता के पास दंड प्रक्रिया संहिता और उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के अंतर्गत कानूनी अनुतोष पहले से उपलब्ध है और चूंकि ये अधिनियम स्थानीय निकायों जैसाकि नगर निमग, नगरपालिकाएं, नगर पंचायत, नगर परिषद् को शासित करते हैं, इसलिए रास्तों और नालों इत्यादि पर से अतिक्रमण हटाए जाने के मामले जनहित याचिका के माध्यम से इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेते हुए नहीं उठाए जा सकते । यदि उपलब्ध आनुकल्पिक अनुतोष का आश्रय लिया गया किंतु प्राधिकारियों द्वारा अक्रमण्यता दर्शित की गई, तो व्यथित व्यक्ति उचित निर्देश के लिए इस न्यायालय की शरण अवश्य ले सकता है, किंतु जनहित याचिका के माध्यम से नहीं । माननीय उच्च न्यायालय ने आगे स्पष्ट किया कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने

बारंबार इस बात पर जोर दिया है कि न्यायिक प्रणाली निरर्थक याचिकाओं द्वारा गंभीर रूप से प्रभावित होती है और अविवेचित और निरर्थक मुकदमेबाजी के संबंध में इस न्यायालय में फाइल होने वाले मुकदमों को रोके जाने के लिए कुछ समाधान अंतर्वलित किया जाना चाहिए और इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक मुकदमेबाजी में निर्दोष व्यक्ति ही पीड़ित होता है । माननीय उच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि उन राज्य अभिकरणों के विरुद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए जो उच्चतम न्यायालय तक अंतहीन मुकदमेबाजी में अंतर्वलित रहते हैं, जिसका कारण विनिश्चय लेने में उत्तरदायित्व से बचने की मानसिकता है । माननीय उच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि निरर्थक और लघु मामले में कड़ाईपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए और भारी लागत अधिरोपित की जानी चाहिए, चूंकि इस प्रकार की मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित किए जाने के कारण न्याय के उद्देश्य प्रभावित होते हैं ।

पत्रिका में समायोजित सामग्री और गुणवत्ता के संबंध में सभी पाठकों के विचार अपेक्षित हैं । अगली पत्रिका के संपादन के समय उनके विचारों पर ध्यान दिया जाएगा ।

अविनाश शुक्ला
संपादक

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

सितंबर, 2020

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अनुराग श्रीवास्तव और अन्य **बनाम** भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और अन्य	305
मिश्री खान और अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	351
राहुल कुमार सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य	253
सीमा चौहान (श्रीमती) **बनाम** राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य	323
स्वप्रेरणा से (न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से लिया गया संज्ञान) **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	345

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 21

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67)

– धारा 15 और 21(5) [सपठित राजस्थान लघु खनिज रियायत नियम, 1986 का नियम 48(4)] – अप्राधिकृत उत्खनन के लिए शास्ति – 1986 के नियम का नियम 48(4) विधिक प्राधिकार के बिना उत्खनित खनिजों की लागत के अतिरिक्त किराया, रॉयल्टी या प्रभार्य कर की वसूली के लिए उपबंधित करता है – यह नियम 1957 के अधिनियम की धारा 21(5) के उपबंधों के सामंजस्य में है – यह नियम संवैधानिक रूप से विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है ।

मिश्री खान और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 351

महामारी अधिनियम, 1897 (1897 का 3)

– धारा 2 [सपठित भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा जारी कोविड-19 दिशानिर्देश] – खतरनाक महामारी के संबंध में विशेष उपाय करने की शक्तियां – महामारी का प्रसार रोके जाने के संबंध में विशेष उपाय कोविड-19 पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की नवीनतम सलाह को ध्यान में रखते हुए जनहित में, हुक्का बार, जहां हुक्का या जल पाइपलाइन के माध्यम से धूम्रपान किया जाता है, को प्रतिषिद्ध किया जाना आवश्यक है – उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव राज्य में संचालित बार, रेस्टोरेंट और कैफे संचालकों को उनके ग्राहकों को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलब्ध कराने से प्रतिषिद्ध करने के लिए निर्देश जारी करेंगे ।

स्वप्रेरणा से (न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से लिया गया संज्ञान) बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 345

पृष्ठ संख्या

राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 (1956 का 48)

– धारा 3-घ और 3-छ(3) – भूमि अधिग्रहण की घोषणा – प्रतिकर के विनिर्धारण हेतु दो स्थानीय समाचार पत्रों, जिनमें से एक वर्णाकुलर भाषा में होगा, में समस्त हितबद्ध व्यक्तियों से अर्जित की जाने वाली भूमि के बाबत दावे आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना का प्रकाशन – प्रत्यर्थियों का पक्षकथन कि धारा 3-छ(3) के अधीन प्रकाशित सूचना में भूलवश धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया, किंतु कोई शुद्धिपत्र जारी नहीं किया गया – प्रत्यर्थियों ने अनुपूरक खंडन शपथपत्र फाइल किया किंतु सूचना को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया – धारा 3-घ के अधीन सूचना को धारा 3-छ(3) के अधीन प्रकाशित सूचना नहीं माना जा सकता – धारा 3-छ(3)के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन न किए जाने के कारण अधिनिर्णय अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

अनुराग श्रीवास्तव और अन्य बनाम **भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और अन्य** 305

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8)

– धारा 7, 8 और 10 [हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षता अधिनियम, 1956 की धारा 6 और सामान्य नियम (सिविल) का नियम 657] – संरक्षता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति – अवयस्क का संरक्षक नियुक्त किए जाने हेतु आवेदन – आवेदक द्वारा आज्ञापक प्रक्रिया का पालन सुनिश्चित न किया जाना और संरक्षक की हैसियत से कार्य करने की इच्छा के बाबत घोषणा संलग्न न किया जाना – आवेदन धारा 7 के अधीन प्रस्तुत किया जाना चाहिए था और प्रस्तुत

पृष्ठ संख्या

किए जाने के पूर्व धारा 8 और 10 में विहित प्रक्रिया का पालन किया जाना आवश्यक था – आवेदक धारा 8 और 10 के अधीन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था ।

सीमा चौहान (श्रीमती) बनाम **राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य** 323

– धारा 25 – अवयस्क की अभिरक्षा का संरक्षक का हक – यदि न्यायालय का यह विचार होता है कि अवयस्क के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उसको संरक्षक की अभिरक्षा में रखा जाए, तो न्यायालय उचित आदेश पारित कर सकता है और आदेश के प्रवर्तन के लिए अवयस्क को गिरफ्तार भी करा सकता है और उसे संरक्षक की अभिरक्षा में सौंप सकता है ।

सीमा चौहान (श्रीमती) बनाम **राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य** 323

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – यह सामान्य परंपरागत मुकदमेबाजी नहीं होती, बल्कि सर्वथा भिन्न प्रकार की मुकदमेबाजी होती है, जिसमें मुकदमेबाजी करने वाले दो पक्षों के मध्य विवाद होता है, जिनमें से एक पक्ष दूसरे पक्ष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करता है और अनुतोष की ईप्सा करता है और दूसरा पक्ष ऐसे किसी दावे का विरोध करता है या चाहे गए अनुतोष से अपनी प्रतिरक्षा करता है – जनहित याचिका विरोध व्यक्त करने वाली प्रकृति की मुकदमेबाजी होती है – यह एक व्यक्ति के अधिकार को दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किए जाने के लिए आशयित नहीं होती, जैसाकि सामान्य मुकदमेबाजी में होता है, बल्कि उस जनहित को न्यायसंगत ठहराए जाने के लिए आशयित

पृष्ठ संख्या

होती है, जिसकी यह मांग होती है कि बड़ी संख्या में लोगों, जो गरीब हैं और अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं, के संवैधानिक या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण असंज्ञेय और अनिस्तारित नहीं रहना चाहिए ।

राहुल कुमार सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 253

– अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – याचियों द्वारा तुच्छ या ऐसे मामलों में अनुतोष के लिए इस न्यायालय की शरण लिया जाना, जिनके बाबत उनको प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है, न्यायालय का मूल्यवान न्यायिक समय व्यर्थ होता है – इस न्यायालय के समक्ष पर्यावरण संरक्षण, लोक जीवन के स्वच्छकरण, लोक न्यास भंग, जन उपयोगी सेवाओं को भवन निर्माताओं इत्यादि के निजी लाभ के लिए प्रयोग किए जाने से संबंधित बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं वर्षों से लंबित हैं और अनेक निरर्थक होने जा रही हैं, चूंकि अधिकांश न्यायिक समय तुच्छ मामलों पर आधारित विवाद्यकों को उठाने वाली बड़ी संख्या में फाइल की गई नई जनहित याचिकाओं, जो लोक महत्व के विवाद्यक नहीं उठाती, पर विचार करने में व्यर्थ हो जाता है – अत: अब समय आ गया है, जब निरर्थक और तुच्छ मामलों को उठाने वाली जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए ।

राहुल कुमार सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 253

– अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – राज्य या लोक प्राधिकारी, जिनके विरुद्ध जनहित याचिका फाइल की जाती है, को वास्तव में इसका स्वागत करना चाहिए, चूंकि इससे उनको अपनी भूल को सुधारने या

पृष्ठ संख्या

समाज, जिसका कल्याण राज्य या लोक प्राधिकारी का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए, के गरीब और कमजोर वर्गों के विरुद्ध किए गए अन्याय के निस्तारण का अवसर प्राप्त होगा ।

राहुल कुमार सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 253

– अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – विधिसम्मत शासन का यह आशय नहीं होता कि विधि का संरक्षण मात्र कुछ भाग्यशाली लोगों को उपलब्ध होना चाहिए – गरीबों के भी सिविल और राजनैतिक अधिकार होते हैं और विधिसम्मत शासन उनके लिए भी आशयित है ।

राहुल कुमार सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 253

– अनुच्छेद 32 और 136 जनहित याचिका – जनहित याचिका विधि सहायता आन्दोलन का महत्वपूर्ण रणनीतिक आयुध है, जो न्याय को मानवता के सबसे निचले पायदान पर आने वाले लोगों की पहुंच के भीतर लाने के लिए आशयित है ।

राहुल कुमार सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** 253

– अनुच्छेद 246 और 14 [सपठित हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(क) और 19(ख)] – कानून के उपबंध का अर्थान्वयन और निर्वचन समाज के कल्याण में किया जाना – यह सुस्थापित है कि यदि किसी कानून के आधार पर किया गया एक अर्थान्वयन कानून को असंवैधानिक कर देगा, जबकि अन्य अर्थान्वयन, जो कि संभव है, कानून को संवैधानिक सीमाओं के भीतर रखेगा, तो न्यायालय पश्चात्वर्ती कानून को पूर्विकता प्रदान करेगा और यह

पृष्ठ संख्या

उपधारणा करेगा कि विधानमंडल द्‌वारा अधिनियमित कानून संवैधानिक परिसीमाओं के अंतर्गत है ।

सीमा चौहान (श्रीमती) बनाम **राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य** 323

– अनुच्छेद 246 और 14 [सपठित खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 15(1)] – विधायी सक्षमता – अप्राधिकृत उत्खनन के लिए शास्ति – क्या अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों को नियंत्रित किए जाने के लिए अंगीकृत उपाए और अप्राधिकृत रूप से उत्खनित खनिजों की लागत की वसूली खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों को प्रदान करने वाले विनियम से प्रत्यक्षत: संबंधित हैं – यह नहीं कहा जा सकता कि नियम 48, जो अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों पर विचार करता है, को विरचित करना राज्य सरकार की विधायी सक्षमता के परे है ।

मिश्री खान और अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 351

हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32)

– धारा 6क और 19ख – संरक्षक के रूप में नैसर्गिक माता और पिता के मध्य लिंग के आधार पर पक्षपात – वर्तमान में परिवर्तित होते समय, विधि और संवैधानिक मूल्यों की परिवर्तनशील दृष्टि में लिंग के आधार पर पक्षपात को समाप्त किया गया है और तद्‌नुसार माता और पिता को अवयस्क की संरक्षता के बाबत समान हैसियत प्रदान की गई है ।

सीमा चौहान (श्रीमती) बनाम **राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य** 323

पृष्ठ संख्या

– धारा 25 और धारा 7 [सपठित सामान्य नियम (सिविल), 1957 की धारा 657] – माता और पिता में से कोई एक संरक्षक उस संरक्षक से प्रजातिगत रूप से भिन्न होगा जिसको अधिनियम की धारा 7(2) के अधीन न्यायालय द्वारा वसीयत या अन्य लिखत के आधार पर नियुक्त किया जाता है – नैसर्गिक न्याय संरक्षक साधारणत: अध्याय 2 की योजना के अनुसार उपयुक्त नहीं होते या उन व्यक्तियों की कोटि के अंतर्गत नहीं आते, जिन्हें अधिनियम की धारा 7 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का अवलंब लेते हुए संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता है ।

सीमा चौहान (श्रीमती) बनाम **राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य** 323

राहुल कुमार सिंह

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

[2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका (जनहित याचिका) संख्या 1215]

तारीख 31 मई, 2019

न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार सिंह बघेल और न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – याचियों द्वारा तुच्छ या ऐसे मामलों में अनुतोष के लिए इस न्यायालय की शरण लिया जाना, जिनके बाबत उनको प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है, न्यायालय का मूल्यवान न्यायिक समय व्यर्थ होता है – इस न्यायालय के समक्ष पर्यावरण संरक्षण, लोक जीवन के स्वच्छकरण, लोक न्यास भंग, जन उपयोगी सेवाओं को भवन निर्माताओं इत्यादि के निजी लाभ के लिए प्रयोग किए जाने से संबंधित बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं वर्षों से लंबित हैं और अनेक निरर्थक होने जा रही हैं, चूंकि अधिकांश न्यायिक समय तुच्छ मामलों पर आधारित विवाद्यकों को उठाने वाली बड़ी संख्या में फाइल की गई नई जनहित याचिकाओं, जो लोक महत्व के विवाद्यक नहीं उठाती, पर विचार करने में व्यर्थ हो जाता है – अत: अब समय आ गया है, जब निरर्थक और तुच्छ मामलों को उठाने वाली जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – जनहित याचिका विधि सहायता आन्दोलन का महत्वपूर्ण रणनीतिक आयुध है, जो न्याय को मानवता के सबसे निचले पायदान पर आने वाले लोगों की पहुंच के भीतर लाने के लिए आशयित है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका –

यह सामान्य परंपरागत मुकदमेबाजी नहीं होती, बल्कि सर्वथा भिन्न प्रकार की मुकदमेबाजी होती है, जिसमें मुकदमेबाजी करने वाले दो पक्षों के मध्य विवाद होता है, जिनमें से एक पक्ष दूसरे पक्ष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करता है और अनुतोष की ईप्सा करता है और दूसरा पक्ष ऐसे किसी दावे का विरोध करता है या चाहे गए अनुतोष से अपनी प्रतिरक्षा करता है – जनहित याचिका विरोध व्यक्त करने वाली प्रकृति की मुकदमेबाजी होती है – यह एक व्यक्ति के अधिकार को दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किए जाने के लिए आशयित नहीं होती, जैसाकि सामान्य मुकदमेबाजी में होता है, बल्कि उस जनहित को न्यायसंगत ठहराए जाने के लिए आशयित होती है, जिसकी यह मांग होती है कि बड़ी संख्या में लोगों, जो गरीब हैं और अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं, के संवैधानिक या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण असंज्ञेय और अनिस्तारित नहीं रहना चाहिए ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – विधिसम्मत शासन का यह आशय नहीं होता कि विधि का संरक्षण मात्र कुछ भाग्यशाली लोगों को उपलब्ध होना चाहिए – गरीबों के भी सिविल और राजनैतिक अधिकार होते हैं और विधिसम्मत शासन उनके लिए भी आशयित हैं ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 32 और 136 – जनहित याचिका – राज्य या लोक प्राधिकारी, जिनके विरुद्ध जनहित याचिका फाइल की जाती है, को वास्तव में इसका स्वागत करना चाहिए, चूंकि इससे उनको अपनी भूल को सुधारने या समाज, जिसका कल्याण राज्य या लोक प्राधिकारी का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए, के गरीब और कमजोर वर्गों के विरुद्ध किए गए अन्याय के निस्तारण का अवसर प्राप्त होगा ।

इस रिट याचिका में याची का यह दावा है कि वह जिला मऊ के मोहल्ला भीती चौक का रहने वाला जनभावनाओं से जुड़ा हुआ व्यक्ति है । उसने इस रिट याचिका के माध्यम से जनोपयोगी भूमि के संरक्षण के प्रयोजनार्थ उपरोक्त मोहल्ले के सामान्य लोगों की परेशानी के प्रश्न को उठाया है । इस जनहित याचिका के माध्यम से जिस अनुतोष की ईप्सा की गई है, वह यह है कि, “जिला मऊ के मोहल्ला भीती चौक

स्थित आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल लगभग 0.36 हेक्टेयर है और जिसको राजस्व अभिलेखों में 'नाला (नाली-नलकूप) और सड़क' के रूप में अभिलिखित किया गया है, पर प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण/निर्माण को हटाए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।" इस रिट याचिका में यह अभिकथित किया गया है कि मोहल्ला भीती चौक को चकबंदी क्रियान्वयन के अंतर्गत लाया गया था, आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल 0.36 हेक्टेयर है और जो उक्त मोहल्ला में स्थित है, को इस रिट याचिका में राजस्व अभिलेखों में 'नाला (नाली-नलकूप) और सड़क' के रूप में अभिलिखित किया गया है, उपरोक्त भूमि 1952 के उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 और 2006 की उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता के उपबंधों के अधीन आच्छादित है । इस रिट याचिका में यह भी अभिकथित किया गया है कि पंचम प्रत्यर्थी, जो एक निजी व्यक्ति है, ने आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल 0.36 हेक्टेयर है, पर अवैध रूप से अतिक्रमण कर लिया है, तथापि, राजस्व प्राधिकारियों ने पंचम प्रत्यर्थी के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है, याची ने उक्त अवैध अतिक्रमण के संबंध में तारीख 12 मार्च, 2019 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जो मऊ के उपखंड मजिस्ट्रेट को संबोधित है और जिसकी प्रति अभिलेख पर उपलब्ध है, परंतु याची ने इस बाबत कोई पावती फाइल नहीं की है जिसके आधार पर यह साबित किया जा सके कि उक्त आवेदन संबद्ध प्राधिकारी द्वारा प्राप्त कर लिया गया है । रिट याचिका में यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थियों ने उपरोक्त आवेदन के बावजूद अवैध निर्माण हटाए जाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है । इस रिट याचिका के साथ अन्य रिट याचिकाएं भी बंधी हुई हैं और रिट याचिकाओं के इस बंडल में विधि के सामान्य प्रश्न अंतर्वलित हैं, इसलिए सभी रिट याचिकाओं का निर्णय इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है । तथापि, सुविधा की दृष्टि से प्रमुख रिट याचिका, जो 2019 की जनहित याचिका संख्या 1215 है, के तथ्यों पर विचार किया जा रहा है । सभी जनहित याचिकाओं को खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के परिशीलन से मजिस्ट्रेट द्वारा लोक न्यूसेंस के संबंध में प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता दर्शित होती है । मजिस्ट्रेट द्वारा इस शक्ति का प्रयोग पुलिस रिपोर्ट या अन्य सूचना के आधार पर किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट लोक न्यूसेंस हटाए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित कर सकता है और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विवाद सिविल प्रकृति का है तो मजिस्ट्रेट मामले को सिविल न्यायालय को निर्दिष्ट कर देता है । मजिस्ट्रेट 'अन्य सूचना' शब्द पर किसी व्यक्ति, जो लोक न्यूसेंस से व्यथित है, के संबंध में विचार कर सकता है । धारा 133 के अधीन शक्ति का प्रयोग नगरपालिका नाले पर किए गए और ग्राम के सामान्य मार्ग से अवरोध को हटाए जाने के संबंध में किया जा सकता है । इसी प्रकार से 2006 की उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता के अधीन भी तहसीलदार को ग्राम के सामान्य मार्ग, पथ या सामान्य भूमि के स्वतंत्र प्रयोग या जलधारा या जल स्रोत पर किए गए अवरोधों को हटाने की शक्ति प्राप्त है । पूर्वोक्त दोनों उपबंध स्पष्टतः दर्शित करते हैं कि प्रत्येक नागरिक को रास्तों, सड़कों पर अतिक्रमण हटाए जाने के लिए पूर्वोक्त दोनों अधिनियमों के अधीन सक्षम प्राधिकारी के शरण में जाने के द्वारा प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है । हम ऐसे अधिकांश मामलों में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि याचियों ने ऊपर वर्णित अधिनियमों के अधीन उपलब्ध अनुतोष का आश्रय लिए बिना जनहित याचिका फाइल किए जाने के द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्देश की ईप्सा करते हुए इस न्यायालय की शरण ली । बड़ी संख्या में फाइल की गई ये जनहित याचिकाएं इस न्यायालय का महत्वपूर्ण न्यायिक समय व्यर्थ करने वाली हैं । तद्नुसार, हमारा विचार है कि रास्तों, नालों इत्यादि, पर अतिक्रमण हटाए जाने के मामलों में लोगों को दंड प्रक्रिया संहिता और 2006 की उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के अधीन कानूनी अनुतोष उपलब्ध है और चूंकि ये अधिनियम स्थानीय निकायों जैसेकि नगर निगम, नगरपालिकाएं, नगर पंचायत, नगर परिषद् इत्यादि को शासित करते हैं, इसलिए सामान्यतया इन जनहित याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए । यदि कानूनी प्राधिकारियों द्वारा कोई अकर्मण्यता दर्शित की गई तो व्यथित व्यक्ति उचित निर्देश के लिए इस

न्यायालय की शरण ले सकता है, किंतु जनहित याचिका के माध्यम से नहीं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने बारंबार इस विचार पर जोर दिया है कि निरर्थक याचिकाओं पर भारी लागत अधिरोपित की जानी चाहिए । फूल चंद्र और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य और सुब्रत राय सहारा बनाम भारत संघ और अन्य वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि 'न्यायिक प्रणाली निरर्थक याचिकाओं द्वारा गंभीर रूप से प्रभावित होती है' । अविवेचित और निरर्थक मुकदमेबाजी के संबंध में इस न्यायालय की शरण में आने वाले मुकदमेबाजों को रोके जाने के लिए कुछ समाधान अंतर्वलित किया जाना चाहिए । इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक मुकदमेबाजी में निर्दोष व्यक्ति ही पीड़ित होता है । न्यायालय को उन राज्य अभिकरणों के विरुद्ध भी कार्यवाही करनी चाहिए, जो उच्चतम न्यायालय तक अंतहीन मुकदमेबाजी में अंतर्वलित रहते हैं । राज्य के कृत्यकारियों का यह आचरण विनिश्चय लेने में उत्तरदायित्व से बचने की मानसिकता के कारण है । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि निरर्थक और लघु मामलों में कड़ाईपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए और भारी लागत अधिरोपित की जानी चाहिए, चूंकि इस प्रकार की मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित किए जाने के कारण न्याय के उद्देश्य प्रभावित होते हैं । हमारा पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों, ऊपरवर्णित निर्णयज विधियों और हमारे द्वारा ऊपर उल्लिखित कारणों पर सावधानीपूर्वक विचार करने के पश्चात् यह विचार है कि समस्त ऊपर वर्णित जनहित याचिकाएं गुणागुण से रहित हैं । जैसी कि ऊपर चर्चा की गई, याचियों ने लघु या ऐसे मामलों के निस्तारण के लिए इस न्यायालय की शरण ली है, जिनके संबंध में उनको प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है । इन याचिकाओं पर विचार करना मूल्यवान न्यायिक समय को व्यर्थ करना होगा । पर्यावरण संरक्षण, लोक जीवन के स्वच्छकरण, लोक न्यास भंग, जन उपयोगी सेवाओं को भवन निर्माताओं इत्यादि के निजी प्रयोग में परिवर्तित किए जाने से संबंधित बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं लंबित हैं, वे वास्तविक जनहित याचिकाएं वर्षों से लंबित हैं और उनमें से कुछ निरर्थक होने जा रही है चूंकि अधिकांश न्यायिक समय लघु मामलों पर आधारित विवाद्यकों को

उठाने वाली बड़ी संख्या में फाइल की गई नई जनहित याचिकाओं, जो लोक महत्व के विवाद्यक नहीं उठाती, पर विचार करने में व्यर्थ हो जाता है । अत: अब समय आ गया है जब इस न्यायालय को निरर्थक और लघु मामलों के प्रयोजनार्थ फाइल की जाने वाली जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित करना चाहिए । तद्नुसार सभी जनहित याचिकाएं खारिज की जाती हैं । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इन सभी जनहित याचिकाओं के खारिज किए जाने के कारण इनमें उठाए गए मुद्दों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । याचियों को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वे विधि के अंतर्गत उपलब्ध अन्य अनुतोष प्राप्त करने के लिए प्रयास करें । (पैरा 38, 39, 40, 41, 42, 44 और 45)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 6 एस. सी. सी. 72 : **तहसील पुणावाला** बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ;	43
[2014]	(2014) 13 एस. सी. सी. 112 : **फूल चंद्र और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	42
[2014]	(2014) 8 एस. सी. सी. 470 : **सुब्रत राय सहारा** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	42
[2012]	(2012) 3 एस. सी. सी. 619 : **मनोहर जोशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ;	28
[2011]	(2011) 13 एस. सी. सी. 167 : **भारत संघ और अन्य** बनाम **जे. डी. सूर्यवंशी** ;	32
[2011]	(2011) 9 एस. सी. सी. 354 : **दिल्ली एयरटेक सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	23

[2011] (2011) 8 एस. सी. सी. 568 :
पीपुल यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट और अन्य बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 9

[2010] (2010) 3 एस. सी. सी. 402 :
उत्तरांचल राज्य बनाम **बलवंत सिंह और अन्य** ; 10

[2007] (2007) 4 एस. सी. सी. 737 :
द डारेक्टरेड आफ फिल्म फेस्टिवल और अन्य बनाम **गौरव अश्विन जैन और अन्य** ; 32

[2006] (2006) 3 एस. सी. सी. 549 :
इंटेलेक्चुअल्स फोरम, तिरुपति बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य** ; 22

[2005] (2005) 5 एस. सी. सी. 136 :
गुरपाल सिंह बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ; 34

[2002] (2002) 2 एस. सी. सी. 333 :
बालकों, कर्मचारी संघ (पंजीकृत) बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 31

[1999] (1999) 6 एस. सी. सी. 464 :
एम. आई. बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड बनाम **राधेश्याम और अन्य** ; 29

[1998] (1998) 7 एस. सी. सी. 273 :
डा. दुर्योधन साहू और अन्य बनाम **जितेन्द्र कुमार मिश्रा और अन्य** ; 33

[1997] (1997) 10 एस. सी. सी. 549 :
बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 8

[1997] (1997) 1 एस. सी. सी. 388 :
एम. सी. मेहता बनाम **कमलनाथ** ; 26

[1996] (1996) 5 एस. सी. सी. 281 :
इंडियन काउंसेल फार इनवायरो – लीगल ऐक्शन बनाम **भारत संघ और अन्य** ; 19

[1991] (1991) 4 एस. सी. सी. 54 :
बैंगलोर मेडिकल ट्रस्ट बनाम **बी. एस. मुदप्पा और अन्य** ; 29

[1987] (1987) 1 एस. सी. सी. 227 :
शिवाजी राव निलांगेकर पाटिल बनाम **डा. महेश माधव गोसावी और अन्य** ; 14

[1982] (1982) 3 एस. सी. सी. 235 :
दिल्ली जल बोर्ड बनाम **नेशनल कैम्पेन फार डिगनिटी एंड राइट आफ सिवरेज एंड एलाइड वर्कर्स और अन्य** ; 9

[1981] (1981) 1 एस. सी. सी. 627 :
खारती और अन्य ।। बनाम **बिहार राज्य और अन्य ।** 8

आरंभिक रिट अधिकारिता : **2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका (जनहित याचिका) संख्या 1215 (साथ में 2019 की जनहित याचिका संख्या 1216, 1218, 1219, 1224, 1226, 1256, 1265, 1268, 1270, 1292, 1324 और 1329).**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 सपठित अनुच्छेद 136 के अधीन जनहित याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री कमलेश शर्मा, गुरु प्रसाद, विजय शंकर चौरसिया, रामकृष्ण यादव, वेद प्रकाश पांडेय, कुंवर मयंक सिंहा, पवन कुमार श्रीवास्तव,

	मोहन लाल पांडेय, देवेन्द्र पांडे, निशिकांत चतुर्वेदी, ब्रजेश कुमार पांडेय, आनंद कुमार श्रीवास्तव, अमरेश यादव, उदय शंकर चौहान, नरेन्द्र सिंह, राष्ट्रपति खड़े और आनंद विजय सिंह
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री धर्मवीर सिंह (मुख्य स्थायी काउंसेल), अर्चित मनध्यान, दिवाकर सिंह, रमेश चंद्र उपाध्याय और देवी प्रसाद मिश्रा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार सिंह बघेल और न्यायमूर्ति रोहित रंजन अग्रवाल ने दिया ।

न्या. बघेल और न्या. अग्रवाल – रिट याचिकाओं के इस बंडल में विधि के सामान्य प्रश्न अंतर्वलित हैं, इसलिए इन सभी रिट याचिकाओं का निर्णय इस सामान्य निर्णय द्वारा किया जा रहा है । तथापि, सुविधा की दृष्टि से प्रमुख रिट याचिका, जो 2019 की जनहित याचिका संख्या 1215 है, के तथ्यों पर विचार किया जा रहा है ।

2. इस रिट याचिका में याची ने यह दावा किया है कि वह जिला मऊ के मोहल्ला भीती चौक का रहने वाला जनभावनाओं से जुड़ा हुआ व्यक्ति है । उसने इस रिट याचिका के माध्यम से जनोपयोगी भूमि को संरक्षित किए जाने के प्रयोजनार्थ उपरोक्त मोहल्ले के सामान्य लोगों की परेशानी को उठाया है । इस रिट याचिका में जिस अनुतोष की ईप्सा की गई है, वह निम्नलिखित है :-

> "जिला मऊ के मोहल्ला भीती चौक स्थित आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल लगभग 0.36 हेक्टेयर है और जिसको राजस्व अभिलेखों में 'नाला (नाली नलकूप) और सड़क' के रूप में अभिलिखित किया गया है, पर प्रत्यर्थी संख्या 5 द्वारा किए गए अवैध अतिक्रमण/निर्माण को हटाए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।"

3. इस रिट याचिका में यह अभिकथित किया गया है कि मोहल्ला भीती चौक को चकबंदी क्रियान्वयन के अंतर्गत लाया गया है । आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल 0.36 हेक्टेयर है और जो उक्त मोहल्ला में स्थित है, को 'नाला (नाली नलकूप) और सड़क' के रूप में अभिलिखित किया है, जो उक्त मोहल्ला में स्थित है और जिसको राजस्व अभिलेखों में 'नाला (नाली नलकूप) और सड़क' के रूप में अभिलिखित किया गया है । उपरोक्त भूमि 1952 के उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम की धारा 132 और 2006 की उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता के उपबंधों के अधीन आच्छादित है ।

4. इस रिट याचिका में यह अभिकथित किया गया है कि पंचम प्रत्यर्थी, जो एक निजी व्यक्ति है, ने आराजी संख्या 985, जिसका क्षेत्रफल 0.36 हेक्टेयर है, पर अवैध रूप से अतिक्रमण किया है, तथापि, राजस्व प्राधिकारियों ने पंचम प्रत्यर्थी, जिसने जनोपयोगी भूमि पर अवैध अतिक्रमण किया है, के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की है । याची ने उक्त अवैध अतिक्रमण के संबंध में तारीख 12 मार्च, 2019 को एक आवेदन प्रस्तुत किया, जो मऊ के उपखंड मजिस्ट्रेट को संबोधित है और जिसकी प्रति अभिलेख पर उपलब्ध है परंतु याची ने इस बाबत कोई पावती फाइल नहीं की है कि जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उक्त आवेदन संबद्ध प्राधिकारी द्वारा प्राप्त कर लिया गया है । रिट याचिका में यह भी अभिकथित किया गया है कि प्रत्यर्थियों ने उपरोक्त आवेदन के बावजूद अवैध निर्माण को हटाए जाने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की है ।

5. हमने याची के विद्वान् काउंसेल और विद्वान् स्थायी काउंसेल को सुना ।

6. याची के विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि चूंकि संबद्ध प्राधिकारी अवैध अतिक्रमण को हटाने में विफल रहे, इसलिए याची, जो जनभावनाओं से जुड़ा हुआ व्यक्ति है, के समक्ष इस जनहित याचिका के माध्यम से इस न्यायालय की शरण में आने के सिवाय अन्य कोई विकल्प नहीं बचा है ।

7. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जिस अनुतोष की ईप्सा इस रिट याचिका में की गई है, उसी के समरूप अनुतोष की ईप्सा करते हुए इस न्यायालय के समक्ष बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं फाइल की गई हैं जिनके माध्यम से यह शिकायत की गई है कि निजी प्रत्यर्थियों ने जनोपयोगी भूमि, चक रोड (पैदल चलने वाला पथ), ग्रामों और साथ ही नगर पंचायतों, नगरपालिकाओं और नगरनिगमों में भी अतिक्रमण किए हैं । हम उक्त तथ्य के संबंध में उदाहरण दिए जाने के प्रयोजनार्थ इस न्यायालय के समक्ष फाइल की गई निम्नलिखित जनहित याचिकाओं में ईप्सित अनुतोषों में से कुछ अनुतोषों को निर्दिष्ट कर रहे हैं, जो निम्नलिखित हैं :-

"**2019 की जनहित याचिका संख्या 1216** (सर्वजीत वर्मा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(i) प्रत्यर्थी प्राधिकारी जो जिला बलिया के पुलिस थाना और तहसील सिकंदरपुर के ग्राम जलौजी, चक रजमान में स्थित आराजी संख्या 670 पर स्थित कुआं, नाली, धार्मिक स्थान और अन्य सामाजिक स्थान से प्रत्यर्थी संख्या 4 के अतिक्रमण के बाबत मामले में जांच किए जाने और उसको तुरंत हटाए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए ।

(ii) इस माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित अवधि के भीतर याची के तारीख 19 मार्च, 2019 के आवेदन (जो इस रिट याचिका का संलग्नक 4 है) को निर्णीत किए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 3 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किया जाए ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1329 (मुश्ताक अहमद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(क) अतिक्रमण करने वालों, जैसेकि प्रत्यर्थी संख्या 8 और 9 को जिला प्रयागराज की तहसील फूलपुर के मौजा

झूंसी कोहना में स्थित आराजी संख्या 117 (एम), 124 (एम) 123 (एम) और 125 (एम) से निष्कासित किए जाने और जनोपयोगी भूमि पर निर्माण करने से निषिद्ध किए जाने के लिए संबद्ध प्राधिकारियों को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किया जाए ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1324 (भूरा **उर्फ** फारुख और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

ग्रामसभा के प्रस्ताव और सरकार द्वारा गहरी नाली की मंजूरी के अनुसरण में मुन्नू फकीर के घर से इंदरीस प्रधान के घर तक नाली के निर्माण के लिए प्रत्यर्थियों को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1292 (पारसनाथ कुशवाहा **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(i) जिला गाजीपुर के पुलिस थाना बरेसर में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के अधीन 2010 के मामला संख्या 3 में तारीख 31 अगस्त, 2017 को पारित आदेश को क्रियान्वित किए जाने और अनुध्यात समयावधि के भीतर प्रश्नगत नाली से अतिक्रमण हटाए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1268 (शफीक खान **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

गाटा संख्या 160, जो तारीख 10 मई, 2019 के प्रत्यावेदन में के अनुसार सामान्य रास्ता पर अवैध निर्माण सामान्य रास्ता है, पर अवैध निर्माण किए जाने से निषिद्ध किए जाने के लिए प्रत्यर्थी प्राधिकारियों को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1270 (गिरीश चंद्र त्रिपाठी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(क) जिला मऊ के पुलिसथाना और तहसील मोहम्मदाबाद गोहना के ग्राम फरीदपुर, पोस्ट बंदीघाट स्थित भूखंड संख्या 3, 117, 118-ख, 162, 164, 177, 441, 442, 471, 475 और 533 (12 भूखंड) जिसका कुल क्षेत्रफल 2.1120 हेक्टेयर है, पर अवैध अतिक्रमण, उपद्रव और बाधा को इस माननीय न्यायालय द्वारा अनुध्यात अवधि के भीतर यथाशीघ्र हटाए जाने के लिए अतिक्रमणकर्ताओं/निजी प्रत्यर्थी संख्या 6 से 28 के विरुद्ध विधिक कार्रवाई किए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 से 4 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1265 (अफरोज तबस्सुम **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(क) न्यायहित में प्रत्यर्थी संख्या 4 से 11 के अवैध कब्जे वाले लोक हैंडपम्पों को निर्मुक्त किए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 और 3 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1256 (रामआश्रय **उर्फ** रामआसरे **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

उपरोक्त ग्राम में आबंटित भू-खंड संख्या 163-ख पर अपने स्वयं के धन से पंचायत भवन का निर्माण किए जाने और हैंडपम्प स्थापित किए जाने के लिए ग्राम प्रधान के विरुद्ध आवश्यक कार्रवाई किए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 अर्थात् प्रयागराज के जिला मजिस्ट्रेट को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1218 (रणवीर सिंह **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य) :

(1) जिला आगरा की तहसील किरावली के मौजा आराजी इमालत में स्थित सरकारी संपत्ति भूमि, जिसका गाटा संख्या 66/2 क्षेत्रफल 0.701 हेक्टेयर और गाटा संख्या 67/2 क्षेत्रफल 0.440 हेक्टेयर है पर प्रत्यर्थी संख्या 4 से 18 के अतिक्रमण और अवैध कब्जे को हटाए जाने के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

(2) प्रत्यर्थी संख्या 2 को दोषी व्यक्तियों, जिन्होंने सरकारी संपत्ति भूमि, जो गाटा संख्या 66/2 क्षेत्रफल 0.701 हेक्टेयर और गाटा संख्या 67/2 क्षेत्रफल 0.44 हेक्टेयर है और जिला आगरा की तहसील किरावली के मौजा आराजी इमलाक में स्थित है, से प्रत्यर्थी संख्या 4 से 18 के अतिक्रमण और अवैध कब्जे में सहायता पहुंचाई, के विरुद्ध उच्चस्तरीय जांच संचालित किए जाने और उनके विरुद्ध समुचित कार्रवाई किए जाने, ताकि भूमि पर कब्जा करने वालों को हतोत्साहित किया जा सके, के लिए प्रत्यर्थी संख्या 2 को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1226 (रामचंद्र **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(1) प्रत्यर्थी संख्या 2 को तारीख 23 अप्रैल, 2019 के प्रत्यावेदन/शिकायत पर विचार किए जाने और उसको निर्णीत किए जाने और जिला फतेहपुर की तहसील अरगपुर स्थित लोक कार्य विभाग की भूमि पर अतिक्रमण हटाए जाने के लिए प्रभावी कार्रवाई किए जाने और अतिक्रमणकर्ताओं का तुरंत निष्कासन सुनिश्चित किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं

(2) प्रत्यर्थी संख्या 2 को प्रत्यर्थी संख्या 4 और 5 और जिला फतेहपुर की तहसील अरगपुर स्थित लोक कार्य विभाग की भूमि से अन्य अतिक्रमणकर्ताओं के विरुद्ध कड़ी विधिक कार्रवाई किए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1219 (राजेन्द्र पाठक **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(i) जिला भदोही की तहसील भदोही के ग्राम और पोस्ट गौड़ा स्थित खसरा संख्या 373, जो राज्य की भूमि है, से अतिक्रमण हटाए जाने के लिए प्रत्यर्थी को निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

2019 की जनहित याचिका संख्या 1224 (शिवचरण **उर्फ** प्रह्लाद **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य) :

(क) प्रत्यर्थियों को विधि और प्रक्रिया के अधीन उनके कर्तव्यों का निर्वहन किए जाने के लिए और मंडी स्थल इटावा में निर्दिष्ट नीलामी चबूतरे, जो क्रय-विक्रय के लिए उत्पादों को लाने वाले किसानों द्वारा उनके उत्पादों को चढ़ाने/उतारने के प्रयोजनार्थ निर्मित किया गया है, को रिक्त कराए जाने के लिए निर्देशित किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

(ख) प्रत्यर्थियों को अनुध्यात अवधि के भीतर, जो माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित की जाए, इटावा के मंडी स्थल में स्थित निलामी चबूतरे को रिक्त किए जाने के लिए उनके कर्तव्यों का निर्वहन किए जाने और अतिक्रमणकर्ताओं के विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट, आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।

(ग) प्रत्यर्थियों को अनुध्यात समयावधि के भीतर, जो माननीय न्यायालय द्वारा निर्धारित की जाए, याची के तारीख

12 अप्रैल, 2019 के आवेदन (जो रिट याचिका को संलग्नक 13 है) को निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ परमादेश की प्रकृति में रिट आदेश या निर्देश जारी किए जाएं ।"

8. पूर्वोक्त जनहित याचिका में अंतर्वलित विवाद्यकों का उल्लेख करने के पूर्व यह उचित होगा कि जनहित याचिकाओं की परिधि के संबंध में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि पर विचार किया जाए । जनहित याचिका की प्रकृति समाज के प्रति शत्रुतापूर्ण नहीं होती । एक अत्यंत महत्वपूर्ण मामला, जिस पर माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जनहित याचिका के रूप में अत्यधिक पहले अर्थात् वर्ष 1980 में विचार किया गया था, भागलपुर बंधकरण (**खारती और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1]) वाला मामला है, जिसमें माननीय उच्चतम न्यायालय ने एक पत्र को जनहित याचिका के रूप में प्रतीत किया था । **बंधुआ मुक्ति मोर्चा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा जनहित याचिका को एक नया आयाम दिया गया । जनहित याचिका को गरीबों, जो अपनी शिकायतों के निस्तारण के लिए न्यायालयों तक पहुंच नहीं रखते के मूल अधिकारों को संरक्षित किए जाने के लिए उच्चतम न्यायालयों में प्रयोग किया जाने वाला एक नया औजार बना दिया गया । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए, 'सुने जाने का अधिकार' के सिद्धांत को शिथिलता प्रदान की गई थी ।

9. जनहित याचिका का उद्देश्य गरीबों के जीवन में सुधार लाना है । गरीबों के भी सिविल और राजनैतिक अधिकार होते हैं और विधि के नियम का उसके लिए भी अर्थ होता है । न्यायालय ने उल्लेख किया है कि यदि गरीबों और अन्याय के आहत असहाय लोगों के मूल अधिकारों के जनहित याचिका के माध्यम से प्रवर्तित किए जाने की ईप्सा की जाती है, तो मानवाधिकारों के कुछ समर्थकों द्वारा इसकी आलोचना विधि के उच्चतम न्यायालय के समय की बरबादी के रूप में की जाती है । उच्चतम न्यायालय ने **दिल्ली जल बोर्ड** बनाम **नेशनल कैम्पेन फार**

---

[1] (1981) 1 एस. सी. सी. 627.

[2] (1997) 10 एस. सी. सी. 549.

डिगनिटी एंड राइट आफ सिवरेज एंड एलाइड वर्कर्स और अन्य[1] वाले मामले में दिए गए अपने निर्णय में **पीपुलस यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइटस और अन्य** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 2 और 3 को उद्धृत किया है, जो निम्नलिखित हैं :-

"2. हम अपनी बात पर पूर्णरूपेण बल देते हुए यह बताना चाहते हैं कि जनहित याचिका, जो विधि सहायता आन्दोलन का एक रणनीतिक आयुध है और जो न्याय को गरीब जनता, जो मानवता के निचले पायदान पर आते हैं, की पहुंच के भीतर लाने के लिए आशयित है, सामान्य परंपरागत मुकदमेबाजी, जिसमें मुकदमेबाजी करने वाले दो पक्षों के मध्य विवाद होता है, जिनमें से एक पक्ष दूसरे पक्ष के विरुद्ध दावा प्रस्तुत करता है और अनुतोष की ईप्सा करता है और दूसरा पक्ष ऐसे किसी दावे का विरोध करता है या चाहे गए अनुतोष से अपनी प्रतिरक्षा करता है, से सर्वथा भिन्न प्रकार की प्रकृति की मुकदमेबाजी होती है और जो आवश्यकत: विरोध व्यक्त करने वाली प्रकृति की मुकदमेबाजी होती है । जनहित याचिका एक व्यक्ति के अधिकार को दूसरे व्यक्ति के विरुद्ध प्रवर्तित किए जाने प्रयोजनार्थ नहीं, जैसाकि सामान्य मुकदमेबाजी के मामलों में होता है, बल्कि यह उस जनहित को प्रोन्नत न्यायसंगत ठहराए जाने के लिए आशयित होती है, जिसकी यह मांग होती है कि बड़ी संख्या में लोगों, जो गरीब हैं और अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ हैं या सामाजिक या आर्थिक रूप से अलाभकारी स्थिति में हैं, के संवैधानिक या विधिक अधिकारों का अतिक्रमण असंज्ञेय और अनिस्तारित नहीं रहना चाहिए । यदि ऐसा होता तो वह विधिसम्मत शासन, जो किसी भी लोकतांत्रिक सरकार के स्वरूप में जनहित का आवश्यक तत्व सृजित करता है, का विनाश होगा । विधिसम्मत शासन का यह आशय नहीं होता कि विधि का संरक्षण मात्र कुछ भाग्यशाली लोगों को उपलब्ध होना चाहिए या विधिसम्मत शासन कुछ भाग्यशाली लोगों के सिविल

---

[1] (1982) 3 एस. सी. सी. 235.

[2] (2011) 8 एस. सी. सी. 568.

और राजनैतिक अधिकारों के प्रवर्तन के ढोंग के अधीन, जो हो रहा है होता रहना चाहिए, वाली मानसिकता को मान्य ठहराए जाने और उसको मान्य ठहराए जाने के लिए निहित हितों द्वारा दुरुपयोग किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जानी चाहिए । गरीबों के सिविल और राजनैतिक अधिकार होते हैं और विधिसम्मत शासन उनके लिए भी आशयित हैं, यद्यपि आज यह केवल कागजों पर विद्यमान है, न कि वास्तविकता में । यदि चीनी के माफियाओं और शराब के शहंशाहों को उनका कारबार चलाने और उपभोग करने वाली जनता का शोषन करते हुए अपने बटुए को भरने के मूल अधिकार प्राप्त हैं, तो क्या समाज के सबसे निम्न पाएदान से संबंध रखने वाले चमारों को उनके कठिन परिश्रम और खून पसीने के द्वारा ईमानदारी के साथ जीविकोपार्जन का मूल अधिकार नहीं है ? पूर्ववर्ती विख्यात वकीलों, जिनको चार या पांच अंकों में शुल्क का संदाय किया जाता है, की भारी भरकम फौज के साथ न्यायालय की शरण ले सकते हैं और मूल अधिकार के लेबल के अधीन सरकार के विरुद्ध उनके शोषण के अधिकार को मान्य ठहराया जाता है, तो न्यायालय उनकी निडरता और साहस की प्रशंसा करते हैं और उनकी स्वतंत्रता और निडरता की वाहवाही की जाती है । किंतु यदि गरीबों और अन्याय के असहाय आहतों के मूल अधिकारों को जनहित याचिका के माध्यम से प्रवर्तित किए जाने की ईप्सा की जाती है, तो मानवाधिकारों के तथाकथित चैम्पियन इसको देश के उच्चतम न्यायालय, जिसको उनके अनुसार इतने अधिक लघु और तुच्छ मामलों में अंतर्वलित नहीं होना चाहिए, के समय की बर्बादी कहते हुए क्रोधित हो जाते है । इसके अतिरिक्त, ये स्वयंभू मानवाधिकार सक्रियतावादी इस बात को भूल जाते हैं कि सिविल और राजनैतिक अधिकार अमूल्य होते हैं, चूंकि वे स्वातंत्र्य और लोकतंत्र के लिए होते हैं और हमारे लोगों की बड़ी जनसंख्या के लिए विद्यमान नहीं होते । बड़ी संख्या में पुरुष, स्त्री और बच्चे, जो हमारी जनसख्या का अधिसंख्य भाग गठित करते हैं, आज अत्यधिक गरीबी की दशाओं में अवमानवीय विद्यमानता का जीवन जी रहे हैं, पूर्ण रूप से पीस देने वाली गरीबी में उनकी मेरुदंड को

तोड़ दिया है और उनकी नैतिक शक्ति को तहस नहस कर दिया है । जनहित याचिका, जैसाकि हम इसको समझते हैं, समाज के सहजभेद्य वर्गों को प्रदत्त संवैधानिक या विधिक अधिकारों, लाभों और विशेषाधिकारों को प्रदान किए जाने को सुनिश्चित करने और उनको सामाजिक न्याय उपलब्ध कराने के लिए राज्य या लोक प्राधिकारी और न्यायालय द्वारा किया जाने वाला सहकारी या सहयोगी प्रयास है । राज्य या लोक प्राधिकारी, जिनके विरुद्ध जनहित याचिका फाइल की जाती है, को उन लोगों, जो सामाजिक और आर्थिक रूप से अलाभकारी स्थिति में हैं, के आधारी मानवाधिकारों, संवैधानिक और साथ ही विधिक अधिकारों को सुनिश्चित करने में इतना अधिक हितबद्ध होना चाहिए, जितना की याची, जो जनहित याचिका न्यायालय के समक्ष फाइल करता है । राज्य या लोक प्राधिकारी, जिसको जनहित याचिका में प्रत्यर्थी के रूप में पक्ष बनाया जाता है, को वास्तव में इसका स्वागत करना चाहिए, चूंकि इससे उनको अपनी किसी भूल को सुधारने या समाज, जिसका कल्याण राज्य या लोक प्राधिकारी का प्रमुख उद्देश्य होना चाहिए, के गरीब और कमजोर वर्गों के विरुद्ध किए गए अन्याय के निस्तारण का अवसर प्राप्त होता है ।

3. कुछ वकीलों, पत्रकारों और लोक जीवन में सक्रिय लोगों के मस्तिष्क में यह भ्रांत धारणा है कि जनहित याचिकाएं अनावश्यक रूप से न्यायालय की फाइलों की संख्या में वृद्धि कर रहीं हैं और पहले से अतिविशाल संख्या में लंबित मामलों, जो अनेक वर्षों से लंबित हैं, की संख्या में अभिवृद्धि कर रही है और इसलिए इसको न्यायालय द्वारा प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए । हमारे विचार में यह पूर्णतया तर्क विरुद्ध विचार है, जिससे अभिजातवाद (स्वयं को विशिष्ट समाज का समझने की मनोवृत्ति) और हैसियतवाद के दृष्टिकोण की गंध आती है । ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग, जो जनहित याचिकाओं का अवमूल्यन कर रहें है, यह महसूस नहीं करते कि न्यायालय केवल धनाढ्य लोगों और हैसियत वालों, जैसेकि मकान मालिका जमींदारों, भद्र लोगों, कारोबारियों और उद्योगपतियों के लिए आशयित नहीं हैं, बल्कि गरीब और दबे

कुचले लोगों, दिव्यांगों और आधे पेट भूखे करोड़ों देशवासियों के लिए भी आशयित हैं । अभी तक न्यायालयों का प्रयोग केवल धनाढ्य और संपन्न लोगों के अधिकारों के न्यायसंगत किए जाने के प्रयोजनार्थ किया जाता रहा है । यही वह विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग है, जो अपने निहित हितों के संरक्षण के लिए न्यायालय की शरण में आने के समर्थ रहे हैं । अभी तक केवल धनाढ्य लोगों के पास न्यायालय के द्वारों को खोलने की स्वर्ण कुंजी रही है ।..... किसी भी राज्य को अपने नागरिकों से यह कहने का अधिकार नहीं कि चूंकि हमारे न्यायालयों में धनाढ्य और विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के बड़ी संख्या में मामले लंबित हैं, इसलिए हम न्याय की ईप्सा करते हुए न्यायालय की शरण लेने के प्रयोजनार्थ गरीबों की सहायता नहीं करेंगे, जब तक कि उन लोगों, जो वहन कर सकते हैं, के मामलों के बड़ी संख्या में बोझ का निस्तारण नहीं हो जाता । अब समय आ गया है जब न्यायालयों को गरीबों के न्यायालय की भूमिका स्वीकार कर लेनी चाहिए, चूंकि गरीब ही इस देश के संघर्षशील लोग हैं । उनको (न्यायालयों को) स्थापित और यथास्थिति वाले आदेशों को मान्य ठहराने वाले के रूप में अपनी प्रकृति को त्यागना होगा । उनको (न्यायालयों को) बड़ी संख्या में लोगों, जिनको सदियों से क्रूर और हृदयहीन समाज द्वारा न्याय प्रदान किए जाने से इनकार किया जाता रहा है, को न्याय प्रदान करने की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील बनाना होगा । उनको (न्यायालयों को) यह महसूस होनी चाहिए कि सामाजिक न्याय हमारे संविधान का मूल मंत्र है और संविधान के अंतर्गत यह उनका पवित्र कर्तव्य है कि वे गरीबों और समाज के सहजभेद्य वर्गों के लोगों के आधारी मानवाधिकारों को प्रवर्तित करें और संवैधानिक मूल्यों को प्राप्त करने में सक्रिय रूप से सहायक बनें ।"

10. उच्चतम न्यायालय ने **उतरांचल राज्य** बनाम **बलवंत सिंह चौपल और अन्य**[1] वाले मामले में जनहित याचिका के उद्भव और इतिहास को सम्मिलित करते हुए समस्त पहलुओं पर विस्तारपूर्वक

[1] (2010) 3 एस. सी. सी. 402.

विचार किया है और जनहित याचिका को उसके आरंभ से लेकर वर्तमान प्रवृत्ति तक तीन चरणों में कोटिबद्ध किया है । उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका के विभिन्न पहलुओं और (प्रशासनिक) प्रणाली के बाहर और भीतर से जनहित याचिका की आलोचना की पृष्ठभूमि पर भी विचार किया है । उच्चतम न्यायालय ने जनहित याचिका की संकल्पना और उसके विकास को तीन चरणों में कोटिबद्ध किया है, जो निम्नलिखित हैं :–

> "43. हम इस निर्णय में जनहित याचिका के उद्‌गम और विकास पर विचार करेंगे । हम यह उचित समझते हैं कि जनहित याचिका को तीन चरणों में विभाजित किया जाए :
>
> **चरण – 1** यह चरण इस न्यायालय के समक्ष फाइल किए गए उन मामलों के संबंध में हैं, जिनमें समाज के हाशिए में पड़े हुए लोगों के वर्गों और समूहों, जो अत्यधिक गरीबी, अशिक्षा और अज्ञानता के कारण इस न्यायालय या उच्च न्यायालयों की शरण में नहीं जा सकते, के अनुच्छेद 21 के अधीन संरक्षित प्राथमिक रूप से मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए निर्देश और आदेश पारित किए जाते हैं ।
>
> **चरण – 2** इस चरण के अंतर्गत वे मामले आते हैं, जो पारिस्थितिकी, पर्यावरण, वन, समुद्री जीवन, वन्यजीवन, पहाड़ों, नदियों, एतिहासिक स्मारकों इत्यादि के संरक्षण और संवर्धन से संबंधित होते हैं ।
>
> **चरण – 3** इसके अंतर्गत वे मामले आते हैं, जिनमें न्यायालयों द्‌वारा शासन में सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता और विश्वनीयता को बनाए रखे जाने के लिए निर्देश जारी किए जाते हैं ।"

11. उच्चतम न्यायालय द्‌वारा चरण 1 के अंतर्गत आने वाले मामलों में यह मताभिव्यक्ति की गई है कि न्यायालयों ने 'समाज के हाशिए में पड़े हुए, वंचित और गरीब वर्ग के लोगों के मूल अधिकारों के संवर्धन और संरक्षण के प्रयोजनार्थ' 'सुने जाने के अधिकार' के परंपरागत नियम को शिथिल कर दिया है और 'व्यथित' की परिभाषा को व्यापक

बना दिया है और तत्पश्चात् निर्देश और आदेश जारी किए' हैं । न्यायालय ने आगे मताभिव्यक्ति की कि 'उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों ने अत्यधिक सम्मान प्राप्त किया है और समाज के गरीब और हाशिए में पड़े हुए वर्गों से संबंधित लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षण और संवर्धन के लिए अपने अभिनव प्रयासों द्वारा जनता की दृष्टि में अत्यधिक विश्वसनीयता अर्जित की है ।'

12. उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित प्रक्रिया के आवश्यक पहलुओं में एक पहलू यह है कि वह व्यक्ति, जो न्यायालय की शरण में जाता है, को यह दर्शित करना होता है कि उसका जनहित याचिका की कार्यवाही के परिणामों में कोई व्यक्तिगत हित नहीं है । किसी जनहित याचिका में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए बड़ी संख्या में निर्णयों और निर्देशों के कारण समाज के दबे कुचले और हाशिए में पड़े हुए वर्गों के लोगों को अत्यधिक लाभ हुआ है ।

13. चरण 2 के अंतर्गत आने वाले मामलों में पारिस्थिति की, पर्यावरण, वन, वन्यजीवन, नदियों इत्यादि के संरक्षण और संवर्धन पर विचार किया जाता है । अब, उच्चतम न्यायालय द्वारा बड़ी संख्या में निर्णय दिए गए हैं, जिनमें पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक महत्वपूर्ण निर्देश जारी किए गए हैं । इन निर्णयों के कारण पर्यावरण के संरक्षण और प्रदूषण की समस्या को संबोधित करने में बड़ी सफलता मिली है और साथ ही देश के प्राकृतिक संसाधनों का संवर्धन भी हुआ है । उच्चतम न्यायालय ने पर्यावरण के मामले में न्यास के सिद्धांत को लागू किया है । यह सिद्धांत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के न्यायालयों द्वारा वर्तमान स्वरूप में प्रतिपादित किया गया था । यह सिद्धांत कहता है कि जब राज्य के स्वामित्व के अंतर्गत कोई संसाधन आता है, जो जनता के प्रयोग के लिए उपलब्ध होना चाहिए, तो न्यायालय प्राकृतिक संसाधनों के संबंध में विचार करते हुए राज्य की कार्रवाई की निष्पक्षता की संवीक्षा न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए कर सकता है ।

14. उच्चतम न्यायालय ने तृतीय चरण में सत्यनिष्ठा, पारदर्शिता और सुशासन बनाए रखे जाने के प्रयोजनार्थ जनहित याचिका के क्षेत्र को

व्यापक बनाया है । उच्चतम न्यायालय ने बड़ी संख्या में फाइल की गई जनहित याचिकाओं में राज्य के शासन के संबंध में विचार किया है । **शिवाजी राव निलांगेकर पाटिल** बनाम **डा. महेश माधव गोसावी और अन्य**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने लोक नैतिकता के गिरते स्तरमान के बाबत न्यायिक दृष्टिकोण व्यक्त किया है । इस मामले में उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि यह न्यायालय इस बाबत उदासीन नहीं बना रह सकता कि लोक मानसिक स्तर और लोक नैतिकता मे तीव्र गीरावट हुई है । अत: यह आवश्यक है कि वातावरण को स्वच्छ किए जाने के साथ-साथ या उसके पूर्व देश में लोक जीवन को भी स्वच्छ किया जाए । हमारे मूल्यों और मानसिक स्तरमान में व्याप्त प्रदूषण भी उसी प्रकार से गंभीर खतरा है, जैसेकि पर्यावरण का प्रदूषण और जहां ऐसी स्थितियां उत्पन्न होती हैं, यह न्यायालय मौन और मूक नहीं रह सकता और न ही रहना चाहिए ।

15. **बलवंत सिंह चौपल** (उपरोक्त) वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने विस्तारपूर्वक जनहित याचिका के सभी तीनों चरणों के संबंध में विधि की संवीक्षा करने के पश्चात् निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :-

> "31. हमारे विचार के अनुसार जनहित याचिका उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयोग की जाने वाली अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकारिता है । न्यायालयों ने बड़ी संख्या में फाइल किए गए मामलों में महत्वपूर्ण निर्देश दिए हैं और आदेश पारित किए हैं, जिनके कारण देश में सकारात्मक परिवर्तन आए हैं । बड़ी संख्या में फाइल किए मामलों में न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्देशों के कारण समाज के हाशिए में पड़े हुए वर्गों को अत्यधिक लाभ हुआ है । इसके कारण पारिस्थिति की, पर्यावरण, वन, समुद्री जीवन, वन्यजीवन इत्यादि के संरक्षण और संवर्धन में भी सहायता प्राप्त हुई है । किसी सीमा तक न्यायालयों द्वारा दिए गए निर्देशों के कारण लोक जीवन में सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता को बनाए रखने में भी सहायता प्राप्त हुई है ।

---

[1] (1987) 1 एस. सी. सी. 227.

XXX XXX XXX

87....... न्यायालय ने उस मामले में इस बात पर जोर दिया कि न्यायालय के निर्देश जनहित, पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण का उन्मूलन और निरंतर विकास की अपेक्षाओं को पूर्ण करने वाले हों । निरंतर विकास सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि पर्यावरण या पारिस्थिति की के लिए कोई खतरा उत्पन्न न हो ।

XXX XXX XXX

143. दुर्भाग्यवश बाद में यह पाया गया कि इतनी अधिक महत्वपूर्ण अधिकारिता, जिसको न्यायालयों द्वारा अत्यधिक सावधानी और सुरक्षा के साथ सृजित किया गया और उसका पालन-पोषण किया गया, का कुछ याचिकाएं फाइल किए जाने के द्वारा विध्वंशक उद्देश्यों के लिए जानबूझकर दुरुपयोग किया जा रहा है । हम समझते हैं कि अब समय आ गया है जब वास्तविक और सद्भाविक जनहित को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और साथ ही परेशान करने वाली जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित किया जाना चाहिए । हमारी सुविचारित राय में, हमको इस देश के लोगों के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए इस महत्वपूर्ण अधिकारिता का संरक्षण और संवर्धन करना चाहिए और हमको न्यायालयों द्वारा जारी किए गए धनीय और गैर धनीय निर्देशों के आधार पर इसके दुरुपयोग के रोकथाम के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए ।

XXX XXX XXX

148. प्रथम कोटी के मामले वे मामले हैं, जिनमें न्यायालय परेशान करने वाली जनहित याचिकाएं फाइल किए जाने पर अत्यधिक लागत अधिरोपित करते हुए याचिकाओं को खारिज कर देते हैं । **नीतू** बनाम **पंजाब राज्य** [ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 578] वाले मामले में न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह आवश्यक है कि यह सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ अत्यधिक लागत अधिरोपित की जाएगी कि यह संदेश सही दिशा में जाए कि

अस्पष्ट आशय के साथ फाइल की गई याचिकाओं को न्यायालय अनुमोदित नहीं करते ।

XXX XXX XXX

157. **होलीकाऊ पिक्चर्स (प्राइवेट लि.)** बनाम **प्रेमचंद्र मिश्रा** [(2007)14 एस. सी. सी. 281] वाले मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :-

'..... 12. इस बात को अवेक्षित किया जाना निराशापूर्ण है कि न्यायालयों के समक्ष आरंभ की गई इस प्रकार की निरर्थक कार्यवाहियों के कारण बड़ी संख्या में कार्यदिवस व्यर्थ हो जाते हैं, जिस समय का सदुपयोग अन्यथा रूप से वास्तविक मुकदमों के निस्तारण के लिए किया जा सकता था । यद्यपि हम जनहित याचिका की प्रशंसनीय संकल्पना को पल्लवित और विकसित करने का कोई प्रयास नहीं छोड़ते और गरीब, अनभिज्ञ, दलित और वे व्यक्ति जिनको आवश्यकता है और जिनके मूल अधिकारों का अतिलंघन और उल्लंघन हुआ और जिनकी शिकायतों पर ध्यान नहीं दिया गया, जिनका कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं है और जिनको सुना नहीं जाता, के प्रति सहानुभूति के लिए अपने हाथ बढ़ाते हैं, फिर भी हम इस बात का अनदेखा नहीं कर सकते बल्कि अपना विचार व्यक्त करते हैं कि जबकि करोड़ों रुपए के मूल्य वाली संपत्तियों को अंतर्वलित करने वाले सिविल मामलों से संबंधित विधि सम्मत शिकायतों वाले वास्तविक मुकदमेबाज और दांडिक मामलों, जिनमें अनकही व्यथा के अधीन फांसी के तख्ते का सामना करने वाले मृत्यु के दंडादेश द्वारा दंडित व्यक्ति और वे व्यक्ति, जो आजीवन कारावास द्वारा दंडित हैं और जिनको अनेक वर्षों से कारावास में रखा गया है, सेवा मामलों-सरकारी या निजी सेवा में अनुचित विलंब का सामना करने वाले व्यक्ति, वे व्यक्ति जो ऐसे मामलों में निस्तारण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जिनमें लोक राजस्व या कर की रकम का अप्राधिकृत संग्रह अंतर्वलित है, वे बंदी, जो निरोधादेश से

अपनी निर्मुक्ति की प्रत्याक्षा कर रहे हैं इत्यादि, सभी वर्षों से लंबी सर्पाकार पंक्ति में इस आशा के साथ खड़े हैं कि न्यायालयों में उनके भी मामले सुने जाएंगे और उनकी शिकायतों का भी निस्तारण होगा, दस्तंजाद, हस्तक्षेपी, अंतर्वेस्टा, राहगीर या मध्यक्षेपी, जिनका जनहित से बिलकुल भी कोई वास्ता नहीं होता, सिवाए स्वयं के लिए या अन्य लोगों के प्रतिनिधि के रूप में निजी फायदे या निजी लाभ के लिए या किसी अन्य बाह्य हेतुक के लिए या प्रसिद्धि की चकाचौंध के लिए, जनहित याचिका का मुखौटा धारण करके अपने चेहरे को छुपाते हुए कतार को तोड़ देते हैं और परेशान करने वाली और निरर्थक याचिकाएं फाइल करने के द्वारा न्यायालयों के समक्ष उपस्थित हो जाते हैं और इस प्रकार न्यायालयों के मूल्यवान समय को आपराधिक रूप से व्यर्थ करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप न्यायालयों के द्वार के बाहर लगी हुई वादकारियों की लंबी कतार कभी आगे नहीं बढ़ पाती और यह विलक्षण स्थिति वास्तविक मुकदमेबाजों के मस्तिष्क में हताशा की भावना सृजित करती है और इस कारणवश वे हमारी न्यायिक प्रणाली के प्रशासन में विश्वास खो बैठते हैं ।'

158. न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति करते हुए चेतावनी दी कि [**होलीकाऊ** (उपरोक्त) वाला मामला] :-

'10. .... 13. जनहित याचिका ऐसा औजार है जिसका प्रयोग अत्यधिक सावधानी और सुरक्षा के साथ किया जाना चाहिए और न्यायपालिका को इस बात पर विचार करते हुए अत्यंत सावधान रहना चाहिए कि कहीं जनहित के खूबसूरत पर्दे के पीछे बदसूरत निजी दुर्भावना, निहित हित और/या प्रसिद्धि प्राप्त करने की भावना तो अंतर्वलित नहीं है । इसका प्रयोग नागरिकों को सामाजिक न्याय प्रदान किए जाने के प्रयोजनार्थ विधि की आयुधशाला के प्रभावी औजार के रूप में किया जाना चाहिए । जनहित याचिका के आकर्षित करने वाले ब्रांड नाम का प्रयोग दृष्टि के संदेहास्पद उत्पादों के लिए नहीं

किया जाना चाहिए । इसका उद्देश्य वास्तविक लोक अन्याय या लोक क्षति के निस्तारण के लिए होना चाहिए, न कि प्रसिद्धि प्राप्त करने पर आधारित या व्यक्तिगत बदले की भावना पर आधारित .....'

XXX XXX XXX

172. **होलीकाऊ** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि न्यायाधीशों, जो अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हैं, को इस बात पर विचार करते हुए अत्यंत सावधान रहना चाहिए कि कहीं जनहित याचिका के खूबसूरत पर्दे के पीछे कोई बदसूरत निजी दुर्भावना, निहित हित और/या प्रसिद्धि प्राप्त करने की भावना तो अंतर्वलित नहीं है । न्यायालयों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग नहीं हो रहा है ।

XXX XXX XXX

181. हमने वर्तमान मामले के तथ्यों पर सावधानीपूर्वक विचार किया । हमने अनेक निर्णयों में इस न्यायालय और अन्य न्यायालयों द्वारा घोषित विधि का भी परीक्षण किया । जनहित याचिका की शुद्धता और पवित्रता को बनाए रखे जाने के प्रयोजनार्थ यह आवश्यक हो गया है कि निम्नलिखित निर्देश जारी किए जाएं :-

(1) न्यायालयों को वास्तविक और सद्भावी जनहित याचिकाओं को प्रोत्साहित करना चाहिए और उन जनहित याचिकाओं को प्रभावी ढंग से हतोत्साहित और नियंत्रित करना चाहिए, जिनको बाह्य प्रतिफल के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया हो ।

XXX XXX XXX

(3) न्यायालयों को किसी जनहित याचिका पर विचार करने के पूर्व याची की विश्वसनीयता का प्रथम दृष्ट्या सत्यापन करना चाहिए ।

(4) न्यायालयों को किसी जनहित याचिका पर विचार करने के पूर्व याचिका की अंतर्वस्तु की शुद्धता के संबंध में प्रथम दृष्ट्या संतुष्ट होना चाहिए ।

(5) न्यायालयों को इस याचिका पर विचार किए जाने के पूर्व इस बाबत पूर्णतः संतुष्ट होना चाहिए कि सारभूत लोकहित जनहित अंतर्वलित है ।

(6) न्यायालयों को इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि याचिका, जिसमें वृहत्तर लोकहित, घोरता और आकस्मिकता अंतर्वलित है, को अन्य याचिकाओं पर अधिमान प्रदान किया जाना चाहिए ।

(7) न्यायालयों को किसी जनहित याचिका पर विचार करने के पूर्व इस बात को सुनिश्चित करना चाहिए कि जनहित याचिका वास्तविक लोक क्षति या लोक नुकसान के निस्तारण के लिए आशयित है । न्यायालयों को इस बात को भी सुनिश्चित करना चाहिए कि जनहित याचिका को फाइल किए जाने के पीछे कोई व्यक्तिगत लाभ, निजी स्वार्थ या निरर्थक उद्देश्य अंतर्वलित नहीं है ।

(8) न्यायालयों को इस बात को भी सुनिश्चित करना चाहिए कि बाह्य और निरर्थक हेतु के लिए दस्तंदाजों द्वारा फाइल की गई याचिकाओं को उदाहरण बनने वाली लागत अधिरोपित किए जाने के द्वारा या परेशान करने वाली और बाह्य प्रतिफलों के लिए फाइल की गई याचिकाओं को नियंत्रित किए जाने के लिए इसी प्रकार की नवींन पद्धतियों को अंगीकृत किए जाने के द्वारा हतोत्साहित किया जाना चाहिए ।"

16. न्यायालयों को वास्तविक और सद्भाविक जनहित याचिकाओं, जिनको निम्नलिखित मामलों में वास्तविक लोक नुकसान या लोक क्षति के निस्तारण के लिए फाइल किया गया है, को प्रोत्साहित करना चाहिए :

(i) भ्रष्टाचार की मात्रा जो लोक जीवन में सत्यनिष्ठा की कमी की ओर ले जाने वाली हो; सुशासन, प्रशासनिक कार्रवाई के न्यायिक पुनर्विलोकन;

(ii) वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, अवैध खनन, वृक्षों की कटाई, नदियों इत्यादि के प्रदूषण पर विचार करने वाले पर्यावरण मामले; जन सुविधाओं वाली भूमि जैसेकि शहर नियोजन में पार्क और आरक्षित खुले स्थान, वन भूमि, पर अतिक्रमण प्राकृतिक संसाधनों का अवैध दोहन ।

(iii) लोक महत्व के मामलों में अन्वेषण करने की उच्चतर न्यायालयों की शक्ति ।

(iv) वे जनहित याचिकाएं, जिनमें वृहत्तर लोकहित अंतर्वलित होता है, पूर्विकता के आधार पर सुनी जानी चाहिए ।

17. तथापि, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह विचार भी व्यक्त किया कि निरर्थक याचिकाओं पर कड़ाईपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए और भारी लागत अधिरोपित किए जाने के द्वारा हतोत्साहित किया जाना चाहिए ।

18. हम ऊपरवर्णित मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए सिद्धांतों और निर्देशों को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि यह न्यायालय व्यापक रूप से निम्नलिखित कोटियों की जनहित याचिकाओं, जिनको इस न्यायालय में सामान्यत: फाइल किया जाता है को वर्गीकृत करता है :-

(i) अधिकाशंत: ग्रामों या छोटे कस्बों में जनसामान्य द्वारा प्रयोग किए जा रहे पथ पर अतिक्रमण हटाए जाने के लिए ;

(ii) 1959 के नगर निगम अधिनियम, 1916 के नगरपालिका अधिनियम, शहरी क्षेत्र अधिनियम, नगर पंचायत अधिनियम, 1958 के भवन क्रियान्वयन विनियम अधिनियम के उपबंधों का अनुपालन सुनिश्चित कराना । जनहित याचिकाओं की इस कोटि में सामान्यत: अतिक्रमण हटाए जाने, उन भवनों को ढहाए जाने

जिनका निर्माण सुसंगत अधिनियम और उप विधियों के अधीन बिना उचित मंजूरी प्राप्त किए हुए किया गया, के प्रयोजनार्थ अनुतोषों की ईप्सा की जाती है ।

(iii) उच्चतम न्यायालय द्वारा तालाबों से अतिक्रमण हटाए जाने के मामलों में जारी किए गए निर्देशों के अनुपालन के लिए ।

(iv) अवैध भट्ठे चलाए जाने, पेड़ों की कटाई किए जाने, जल संबंधी समस्याओं से संबंधित पर्यावरण मामले ।

19. सर्वप्रथम, हम पर्यावरण से संबंधित मामलों का उल्लेख करेंगे । जैसीकि ऊपर जनहित याचिकाओं के बाबत द्वितीय चरण के संबंध में चर्चा की गई है, उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में बड़ी संख्या में निर्देश जारी किए हैं । **इंडियन काउंसेल फार इनवायरो – लीगल ऐक्शन** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्त की कि उच्च न्यायालयों को इस बात को सुनिश्चित किए जाने के बाबत उत्तरदायित्व का निर्वहन करना चाहिए कि प्राधिकारियों द्वारा पर्यावरण के संरक्षण के मामलों में उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी किए गए निर्देशों का अनुपालन किया जाना चाहिए । उच्चतम न्यायालय ने आगे मताभिव्यक्ति की कि उच्च न्यायालय अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्रों की समस्याओं का अधिमूल्यन करने के मामले में बेहतर स्थिति में होते हैं । उच्च न्यायालयों की यह संवैधानिक बाध्यता है कि वे लोगों के मूल अधिकारों का संरक्षण करे । उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालयों को स्मरण कराया कि यह उनका उत्तरदायित्व है कि ऐसे मामलों, जिनमें उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देशों का प्रभाव संपूर्ण देश पर पड़ता हो, तो उच्च न्यायालयों को उन निर्देशों के अनुपालन सुनिश्चित करना चाहिए । निम्नलिखित चर्चा और निष्कर्ष हमारे उद्देश्यों के लिए प्रासंगिक और सुसंगत हैं :

"41. तीव्रगति के साथ होते हुए औद्योगिकरण के साथ पारिस्थितिकी संतुलन को बनाए रखने की आशंका भी बढ़ रही है । जन सामान्य पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता के प्रति जागरुक हो

---

[1] (1996) 5 एस. सी. सी. 281.

रहा है । यद्यपि पर्यावरण के संरक्षण के लिए विधियां अधिनियमित की गई हैं, फिर भी यह कहा जा सकता है कि उन विधियों का प्रवर्तन सुस्त रहा है । सरकारी प्राधिकारियों द्वारा उक्त अधिनियमों के प्रवर्तन के प्रति कोई चिंता दर्शित न किए जाने और पर्यावरण की कीमत पर व्यक्तिगत लाभों के लिए विकास को जारी रखने और वह भी विधि के आज्ञापक उपबंधों के असम्मान के साथ, कुछ जन भावनाओं से जुड़े हुए व्यक्तियों द्वारा जनहित याचिकाएं फाइल की गई हैं । अब पर्यावरण की अधोगति की रोकथाम के लिए न्यायालयों द्वारा अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में विधिक स्थिति और तद्द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों के संरक्षण की ईप्सा किया जाना इस न्यायालय द्वारा दिए गए विभिन्न विनिश्चयों द्वारा पूर्णतः सुस्थापित हो चुका है । पर्यावरण से संबंधित विषयों पर विचार करते हुए न्यायालय का प्राथमिक प्रयास इस बात पर विचार करना होता है कि प्रवर्तन अभिकरणों, चाहे वह राज्य का अभिकरण हो या कोई अन्य प्राधिकारी, विधि के प्रवर्तन की प्रभावी कार्रवाई करे । एक प्रकार से न्यायालयों को लोगों के मूल अधिकारों के संरक्षक की भांति कार्य करना चाहिए, किंतु न्यायालय बहुत से तकनीकी मामलों के संबंध में पूर्णतः सुसज्जित नहीं होते । किसी कारणवश, उनको रिपोर्टों और सिफारिशों के लिए बाहरी अभिकरणों पर निर्भर रहना पड़ता है, जिनके आधार पर समय-समय पर आदेश पारित किए जाते रहे हैं । यद्यपि दिन प्रतिदिन के आधार पर विधि के प्रवर्तन की निगरानी करना न्यायालय का कार्य नहीं है और यह कार्यपालिका का कार्य है, किंतु प्रवर्तन अभिकरणों द्वारा कार्य न किए जाने के कारण न्यायालयों को विधि के क्रियान्वयन के संबंध में प्रवर्तन अभिकरणों को निर्देशित करते हुए आवश्यक रूप से आदेश पारित करने पड़ते हैं ।

42. जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, इस न्यायालय ने लोगों के संवैधानिक अधिकारों के संरक्षण के प्रति अपनी संवैधानिक बाध्यता के प्रति जागरुक होने के कारण पर्यावरण के संरक्षण और प्रदूषण के निवारण के संबंध में विभिन्न प्रकार के मामलों में

निर्देश जारी किए हैं । प्रभावी आदेश पारित किए जाने के जिससे कि यह सुनिश्चित हो जाए कि विकास के साथ-साथ पर्यावरण का संरक्षण भी हो सकता है, के प्रयोजनार्थ इस प्रकार के विवाद्यकों पर विचार करने वाले न्यायालय के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह स्थानीय दशाओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करें । यह अवधारणा की जाती है कि देश के विभिन्न भागों में इस प्रकार की दशाओं के बाबत उच्च न्यायालयों को बेहतर जानकारी होती है । जहां अभिकथन प्रदूषण के फैल जाने या प्रदूषण विरोधी विधियों के अतिलंघन की ओर अग्रसर होने वाले अन्य विधिक उपबंधों से संबंधित हैं, तो उच्च न्यायालय तथ्यों को अभिनिश्चित करने और प्रदूषण विरोधी विधियों के क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने और उनका परीक्षण करने की बेहतर स्थिति में होते हैं । उच्च न्यायालयों को इस प्रकार की विधियों और अधिक प्रभावी नियंत्रण और उनको मानीटर किए जाने के प्रयोजनार्थ ऐसे विवाद्यकों, जो उनके अपने-अपने राज्यों के भीतर भौगोलिक क्षेत्रों में उद्भूत होते हैं या उनसे संबंधित होते हैं, का परीक्षण किए जाने के लिए गुरुत्तर उत्तरदायित्व का निर्वाह करना चाहिए । यहां तक कि ऐसे मामलों में, जिनका प्रभाव संपूर्ण देश पर पड़ता है और जिनमें इस न्यायालय द्वारा सामान्य निर्देश जारी किए जाते हैं, अनेक मामलों में ऐसी विधियों का अधिक प्रभावी क्रियान्वयन किया जाना चाहिए, यदि संबद्ध उच्च न्यायालय इस प्रकार की विधियों के प्रवर्तन को प्रभावी करने के उत्तरदायित्व का निर्वाह करें और विधियों के अतिल्लंघन के संबंध में और पारिस्थितिकी की अधोगति या प्रदूषण के प्रसार के संबंध में अधिकाशंतः स्थानीय निवासियों द्वारा प्रस्तुत की गई शिकायतों का परीक्षण करें ।"

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया ।)

20. उपरोक्त निर्णय के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां उच्चतम न्यायालय के आदेशों के क्रियान्वयन में प्रवर्तन प्राधिकारियों द्वारा अकर्मण्यता का परिचय दिया जाता है, तो उच्च न्यायालयों को उच्चतम न्यायालय के आदेशों का अनुपालन कड़ाईपूर्वक सुनिश्चित करना चाहिए ।

21. अब हम केवल उन मामलों पर विचार करेंगे, जिनके संबंध में इस न्यायालय के समक्ष बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं फाइल की गई हैं :-

(i) **शासन में लोक सत्यनिष्ठा** :

लोक उत्तरदायित्व और लोक कर्तव्य का निर्वहन और लोक बाध्यता का सिद्धांत सुशासन के आधार हैं । लोक उत्तरदायित्व और राज्य कार्रवाई में पारदर्शिता के सिद्धांतों पर विनीत नारायण और अन्य **बनाम** भारत संघ और एक अन्य वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विचार किया गया था । उच्चतम न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि लोक कार्यालयों के पदधारक केवल जनहित के लिए शक्तियां धारण करते हैं । यदि लोक प्राधिकारी के आचरण के परिणामस्वरूप कोई अपराध कारित होता है, तो उस अपराध का शीघ्रतापूर्वक अन्वेषण होना चाहिए और विधिसम्मत शासन को सर्वोपरि रखे जाने के प्रयोजनार्थ समुचित कार्रवाई की जानी चाहिए । हमारे प्रयोजन के लिए पैराग्राफ 55 और 56 उपयुक्त हैं :-

"55. प्रत्येक लोकतंत्र में लोक जीवन के सिद्धांत सामान्य उपयोजन के सिद्धांत होते हैं और प्रत्येक व्यक्ति से यह प्रत्याक्षा की जाती है कि वह प्रत्येक लोक कार्यालय के प्रत्येक पदधारक के आचरण की संवीक्षा करते समय उन सिद्धांतों को ध्यान में रखे । यह कहना घिसापिटा होगा कि लोक कार्यालयों में कार्यरत पदधारकों को कतिपय शक्तियां प्राप्त होती है, जिनका प्रयोग वे केवल लोक हित में कर सकते हैं और इसीलिए उनके द्वारा वे पद जनता के विश्वास में धारित किए जाते हैं । उनमें से किसी के भी द्वारा सत्यनिष्ठा के पथ से किसी भी प्रकार का विचलन, विश्वास का भंग होगा और उसको दबाने के बजाय उस पर कड़ाईपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए । यदि आचरण के परिणामस्वरूप कोई अपराध गठित होता है, तो उसकी शीघ्रतापूर्वक जांच होनी चाहिए और वह अपराधी जिसके विरुद्ध प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है, को

शीघ्रतापूर्वक अभियोजित किया जाना चाहिए ताकि विधि के शासन को मान्य ठहराया जा सके और विधिसम्मत शासन की अवहेलना न हो । न्यायपालिका का यह कर्तव्य है कि वह विधिसम्मत शासन को प्रवर्तित करे और इस प्रकार विधिसम्मत शासन की अवहेलना के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करे ।

56. लोक जीवन में सत्यनिष्ठा की कमी का प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, जिसके कारण भारी मात्रा में भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है । इसका प्रभाव विदेशी निवेश और अंतरराष्ट्रीय मौद्रिक निधि और विश्व बैंक से निधि सहायता पर भी पड़ रहा है, जिन्होंने चेतावनी दी है कि विकासशील देशों को भविष्य में दी जानी वाली सहायता अपेक्षित नियमों, जो भ्रष्टाचार को समाप्त करने वाले हों, के अध्यधीन होगी, जो अंतरराष्ट्रीय सहायता को उन लोगों तक पहुंचने से प्रविरत करती है, जिनके लिए वह आशयित है । बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के कारण अन्वेषणात्मक पत्रकारिता का जन्म हुआ, जो स्वतंत्र समाज का मूल्य है । जनहित याचिका के माध्यम से लोक जीवन में भ्रष्टाचार को उजागर किए जाने की आवश्यकता के कारण भारत में निरंतर न्यायिक पुनर्विलोकन का अवलंब लिया जाता है, किंतु यह अन्य देशों में अज्ञात नहीं है [आर. **बनाम** सेक्रेटरी आफ स्टेट फार फारेन एंड कामनवेल्थ अफेयर्स (1995) 1 डब्ल्यू. एल. आर 386] ।"

22. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **इंटेलेक्चुअल्स फोरम, तिरुपति** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में लोक न्यास के सिद्धांत द्वारा तीन प्रकार के निबंधन कटिबद्ध किए हैं :-

(1) संपत्ति सामान्य जनता के प्रयोग के लिए उपलब्ध होनी चाहिए और इसका प्रयोग केवल सार्वजनिक प्रयोजन के लिए नहीं किया जाना चाहिए ;

---

[1] (2006) 3 एस. सी. सी. 549.

(2) यह आवश्यक नहीं कि उचित नकद या उसके समतुल्य के लिए भी संपत्ति का विक्रय किया जाए;

(3) संपत्ति को (i) परंपरागत प्रयोग या (ii) उसी प्रकार के संसाधनों के प्रकार के प्रयोग के लिए पोषित किया जाना चाहिए ।

23. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **दिल्ली एयरटेक सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में पूर्ण 'आस्था और विश्वास' के सिद्धांत, जो उन कार्यों पर लागू होता है, जिन्हें राज्य के अधिकारियों के पदानुक्रम में किसी अधिकारी द्वारा किया जाता है, पर विस्तारपूर्वक विचार किया । न्यायालय ने मताभिव्यक्ति की कि ऐसी किसी कार्रवाई में 'लोक उत्तरदायित्व और पारदर्शिता' के सिद्धांत शक्ति के कार्यकारी या कानूनी प्रयोग के मामलों में लागू होते हैं और इसके अतिरिक्त यह भी अपेक्षित होता है कि ऐसी किसी भी कार्रवाई में सद्भाविकता की कमी न हो । समय के व्यतीत होने के साथ-साथ न्यायालय द्वारा प्रतिपादित ये सभी सिद्धांत स्पष्टतः आज्ञापक करते हैं कि लोक अधिकारी अपनी निष्क्रियता और उत्तरदायित्वहीन कार्रवाई, दोनों के लिए जवाबदेह होते हैं ।

(अधोरेखांकन पर बल दिया गया ।)

24. यदि जो किया जाना था, नहीं किया गया, तो दोषी अधिकारियों का उत्तरदायित्व निर्धारित होना चाहिए, तभी किसी जवाबदेह प्रशासन का वास्तविक लोक प्रयोजन पूर्ण हो सकेगा । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **दिल्ली एयरटेक सर्विसेस प्राइवेट लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में आगे यह मताभिव्यक्ति की :-

"216. 'पूर्ण आस्था और विश्वास' का सिद्धांत उन कार्यों पर लागू होता है, जिनको अधिकारियों द्वारा किया जाता है । इस बाबत शासकीय कार्यों, जिन्हें किया गया या संपादित किया गया, का अवधारणात्मक साक्ष्य होता है और विहित प्रक्रिया के अनुसार दीर्घकालीन लोक प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए कर्तव्यों का

[1] (2011) 9 एस. सी. सी. 354.

निर्वहन निष्ठापूर्वक किया जाना चाहिए । सरकार के अधिकारियों के पदानुक्रम में विनिश्चय करने की प्रक्रिया में कार्य से बचने और विलंब से बढ़ती हुई चिंता का मामला है । कभी-कभी विलंबित विनिश्चय कानून के नियम के अतिक्रमण में होने के अतिरिक्त पक्षों के अधिकारों पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकते हैं ।

XXX XXX XXX

218. ... लोक कर्तव्यों के निर्वहन में सत्यनिष्ठा की कमी के प्रतिकूल प्रभाव के परिणामस्वरूप, न केवल विनिश्चय किए जाने की प्रक्रिया में, बल्कि अंतिम विनिश्चय में भी विविध त्रुटियां कारित हो सकती है । राज्य के प्राधिकारियों के पदानुक्रम में प्रत्येक प्राधिकारी 'लोक प्रधिकारी' या 'लोक सेवक' होने के कारण उन विनिश्चयों के प्रति जनता और साथ ही राज्य को उत्तरदायी होता है । यह दोहरे उत्तरदायित्व की संकल्पना वृहत्तर लोक हित में हैं और उचित शासन के प्रयोजनार्थ कड़ाईपूर्वक लागू की जानी चाहिए ।"

25. उच्चतम न्यायालय ने **शिवाजी राव नीलांगेकर पाटिल** (उपरोक्त) वाले मामले में एक न्यायिक नोटिस लिया । इस निर्णय का सुसंगत भाग निम्नलिखित है :–

"51. यह न्यायालय इस बाबत विस्मरणशील नहीं हो सकता कि लोक स्तरमान या लोक नैतिकता में भारी गिरावट आई है । यह आवश्यक हो गया है कि इस देश में भौतिक वातावरण को स्वच्छ किए जाने के साथ-साथ या उसके पूर्व लोक जीवन को स्वच्छ किया जाए । हमारे मूल्यों और स्तरमान में प्रदूषण भी उतना ही गंभीर खतरा है जितना कि वातावरण का प्रदूषण । जहां ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है, वहां न्यायालयों को मूक और मौन नहीं बना रहना चाहिए और न ही वे बने रह सकते हैं ।"

(ii) वायु और ध्वनि प्रदूषण, वृक्षों की कटाई, प्राकृतिक संसाधनों का उत्पादन जल, खान और खनिजों के सम्बंध में पर्यावरणीय मामले :

26. पर्यावरण के मामलों में भी जनहित याचिका को प्रोत्साहित

किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **एम. सी. मेहता** बनाम **कमलनाथ**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया :-

"23. यह धारणा देश की विधि में स्थान प्राप्त करती जा रही है कि जनता को अपनी नैसर्गिक विशिष्टताओं को बनाए रखने के लिए कतिपय भूमि और नैसर्गिक क्षेत्रों की अपेक्षा करने का अधिकार है, । पर्यावरण और पारिस्थितिकी को संरक्षित किए जाने की आवश्यकता पर **डेविड वी. हंटर** (मिशिगेन विश्वविद्यालय, यू. एस. ए.) द्वारा एक लेख में विचार व्यक्त किया गया है, जिसका शीर्षक है 'एन इकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव ऑन प्रोपर्टी : ए. कॉल फार ज्युडीशियल प्रोटेक्शन आफ दि पब्लिक इंटरेस्ट इन इनवायरनमेंटली क्रिटिकल रिसोर्सेज़', जो हार्वर्ड इनवायरनमेंटल ला रिव्यू में खंड 12, 1988, पृष्ठ 311 पर संप्रकाशित किया गया और जो निम्नलिखित है :-

'एक अन्य प्रमुख पारिस्थितिकी धारणा यह है कि विश्व सीमित है । पृथ्वी केवल सीमित लोगों और सीमित मानवीय क्रियाकलापों का भार वहन कर सकती है, इसके पहले कि सीमाएं समाप्त न हो जाएं । यह पाठ देश में 1970 के तेल संकट और 1960 के कीटनाशक भय द्वारा पढ़ा गया था । वर्तमान में ओजोन परत का ह्रास जटिल, अनुमान न लगाए जाने योग्य (अप्रत्याशित) और संभवत: आपाती प्रभावों का सुस्पष्ट उदाहरण है, जो पर्यावरणीय सीमाओं का हमारे द्वारा अनादर किए जाने के कारण आर्थिक विकास के लिए खतरा बन गया है । जब पर्यावरण की निर्बाध असीमितता को मानवीय निर्भरता के साथ जोड़ा जाता है, तो इसके जो परिणाम सामने आते हैं, उनको चुनौती नहीं दी जा सकती और जो यह है कि मानवीय क्रियाकलाप किसी बिंदु पर पहुंचकर नियंत्रित हो जाते हैं ।

मानवीय क्रियाकलाप इस नैसर्गिक संसार में अपनी बाह्य सीमाएं प्राप्त करते हैं । संक्षेप में पर्यावरण हमारे

---

[1] (1997) 1 एस. सी. सी. 388.

स्वातंत्र्य पर निर्बंधन अधिरोपित करता है ; ये निर्बंधन मूल्य आधारित रुचियों के उत्पाद नहीं होते बल्कि पर्यावरण की परिसीमाओं की वैज्ञानिक बाध्यताओं के उत्पाद होते हैं । सुधारोन्मुख तकनीकी पर विश्वास के कारण स्थायी रूप से विलंब कारित हो सकता है, किंतु यह विलंब सदैव के लिए कारित नहीं हो सकता, जो अपरिहार्य निर्बंधन हैं । सेवा .... बढ़ोतरी के प्रति पर्यावरण की सक्षमता की एक सीमा होती है, कच्चे माल को उपलब्ध कराने और उपभोग के कारण उपोत्पादन अपशिष्ट को नैसर्गिक रूप से निम्न कोटिकृत किए जाने, दोनों में । तकनीकी को उदारतापूर्वक उपलब्ध कराए जाने के कारण केवल अनिवार्यता को स्थगित किया जा सकता या उसका रुप बदला जा सकता है ।'

प्रो. बारबरा वार्ड ने पारिस्थितिकी अत्यावश्यकता पर विशिष्ट रूप से सुस्पष्ट भाषा में लिखा है :

'हम नैतिक अत्यावश्यकताओं को विष्मृत कर सकते हैं । किंतु आज हमारे भीतर सम्मान, देखभाल और लज्जा की नैतिकता एक ऐसे स्वरूप में विद्यमान है, जिसको छिपाया नहीं जा सकता । हम अपने डी. एन. ए. के साथ धोखा नहीं कर सकते । हम गलत फोटोसिन्थेसिस प्राप्त नहीं कर सकते । हम यह नहीं कह सकते कि हम फोटोप्लैंकटोन के बारे में कुछ भी करने नहीं जा रहें । यह समस्त सूक्ष्म रचना तंत्र हमारे ग्रह पर उपलब्ध जीवन की पूर्व शर्तों के बारे में उपबंधित करते हैं । यह कहना कि हम परवाह नहीं करते, का अर्थ अत्यंत शाब्दिक भाव में यह कहना होगा कि 'हम मृत्यु का चुनाव करते हैं' ।'

निधियों और सामाजिक मूल्यों के मध्य एक सामान्य मान्यता प्राप्त कड़ी होती है, किंतु पारिस्थितिक विज्ञानियों के अनुसार केवल विधि और मूल्यों के मध्य संतुलन मनुष्यों और उनके पर्यावरण के मध्य स्थिर संबंध सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ पर्याप्त नहीं होता । विधियों और मूल्यों को बाह्य

पर्यावरण द्वारा अधिरोपित निर्बंधनों के साथ सामंजस्य स्थापित करना चाहिए । दुर्भाग्यवश, वर्तमान विधिक सिद्धांत ऐसे निर्बंधनों के बारे में शायद ही उपबंधित करते हैं और इसलिए पर्यावरणीय स्थायित्व के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है ।

हमनें ऐतिहासिक रूप से पर्यावरण को हमारी संपत्तियों की संकल्पनाओं के सामंजस्य बैठाने के अनुसार परिवर्तित कर दिया है । हमनें निर्माण किया, जोता और पक्का कर दिया । पर्यावरण किसी बात पर न अड़ने वाला (अनमनीय) सिद्ध हुआ है और किसी सीमा तक अभी भी है । किंतु इस अनमनीयता की भी एक सीमा है और कतिपय प्रकार के पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण संसाधन – उदाहरणार्थ दलदली भूमि और नदी तट वाले जंगल – पर्यावरण पर लंबी अवधि तक व्यापक प्रभाव डाले बिना नष्ट नहीं किए जा सकते और इसलिए वे सामाजिक रूप से स्थायित्व प्राप्त है । पारिस्थितिक विज्ञानियों के प्रयोजनार्थ संवेदनशील संसाधनों को संरक्षण प्रदान किए जाने की आवश्यकता मूल्य आधारित रुचियां परावर्तित नहीं करतीं, किंतु वे प्रकृति की विधियों की यथार्थ मताभिव्यक्तियों के आवश्यक परिणामस्वरूप हैं ।

परिणामस्वरूप पारिस्थितिक विज्ञानी हमको पर्यावरणीय विज्ञान को प्रकृति की कतिपय विधियां उपलब्ध कराने वाले के रूप में देखते हैं । ये विधियां हमारी अन्य विधियों के समान हमारे स्वयं के आचरण और रुचियों की स्वतंत्रता को निर्बंधित करती हैं । हमारी अन्य विधियों की भांति प्रकृति की विधियों को विधायन द्वारा परिवर्तित नहीं किया जा सकता ; वे हमारे ऊपर नैसर्गिक संसार द्वारा अधिरोपित होती हैं । इसलिए नैसर्गिक विधियों की समझ हमारी समस्त सामाजिक संस्थाओं को सूचित होनी चाहिए ।"

(iii) लोक सुविधाएं :

27. देश में बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण जनहित याचिकाओं को जन सुविधाओं से संबंधित मामलों में भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ।

जन सुविधाओं के लिए आरक्षित खुली भूमि/स्थानों पर बेईमान व्यक्तियों द्वारा प्राधिकारियों के साथ दुरभिसंधि करके अतिक्रमण किए जा रहे हैं ।

28. कतिपय मामलों में कानूनी प्राधिकारी मास्टर योजना का अनदेखा करते हैं और निजी भवन निर्माताओं, धनाड्य और प्रभावशाली व्यक्तियों, जो विधि प्रवर्तन प्राधिकारियों और कानूनी प्राधिकारियों पर कानून का प्रयोग उनके पक्ष में करने के लिए दबाव डालते हैं, के लाभ के लिए खुले/लोक स्थानों का प्रयोग परिवर्तित कर देते हैं । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मनोहर जोशी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में वर्तमान प्रवृत्ति को अवेक्षित किया है, जो निम्नलिखित हैं :-

> "209. फिर भी, जैसाकि हमने बैंगलुरु के बैंगलोर मेडिकल ट्रस्ट **बनाम** बी. एस. मुदप्पा और अन्य [(1991) 4 एस. सी. सी. 54] और लखनऊ के एम. आई. बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड **बनाम** राधेश्याम और अन्य [(1999) 6 एस. सी. सी. 464] वाले मामलों में लोक सुविधाओं से संबंधित पूर्ववर्ती विनिश्चयों का परिशीलन किया है और अब जैसाकि हमने पुणे वाले मामले में भी देखा है, जनसुविधाओं के लिए छोड़े गए स्थानों पर योजनाबद्ध तरीके से कब्जे किए जा रहे हैं और अब वे भूस्वामियों और भवन निर्माताओं के लाभ के आधार पर भारत के सभी शहरों में सिकुड़ रहे हैं । अत:, अब समय आ गया है अब इस स्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए । नि:संदेह रूप से भूस्वामियों के प्रतियोगी हितों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, किंतु यह पहले ही किया जा चुका होता, जब शहर की मास्टर योजना को अंतिम रूप प्रदान किया जाता है और भूस्वामी को विधि के अनुसार प्रतिकर प्रदान किया जाता है । अंतत:, जब भूमि विधि के अंतर्गत सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण किए जाने के पश्चात् जनता के लिए आरक्षित हो चुकी हैं, तो किसी व्यक्ति विशेष का हित लोक हित के ऊपर नहीं हो सकता ।"

---

[1] (2012) 3 एस. सी. सी. 619.

29. हम यह भी मताभिव्यक्ति करने के लिए विवश हैं कि इस राज्य में मास्टर योजना और क्षेत्र योजना के उपबंधों के विपरीत भूमि का भू-प्रयोग परिवर्तित किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रशासन और भवन निर्माताओं के मध्य एक अपवित्र गठबंधन निर्मित हो चुका है । उदाहरणार्थ, प्रयागराज में मास्टर योजना को वर्ष 2005 में अधिसूचित किया गया था किंतु 19 वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद भी संपूर्ण शहर के लिए क्षेत्रीय योजना को राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित नहीं किया गया है । इस स्थिति का लाभ लेते हुए शहर के अधिकांश रिहायसी क्षेत्रों को वाणिज्यिक क्षेत्रों में परिवर्तित कर दिया गया है । यदि किसी स्थान के लिए लोक सुविधाओं के लिए आरक्षित कर दिया जाता है, तो उस स्थान को अभिकथित विकास योजना के उपबंधों के विरुद्ध भवन निर्माताओं और शक्तिशाली व्यक्तियों को आबंटित किए जाने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती । खुले स्थानों और पार्कों का भू-प्रयोग परिवर्तित नहीं किया जा सकता या उन पर अतिक्रमण नहीं किया जा सकता । उच्चतम न्यायालय ने **बैंगलोर मेडिकल ट्रस्ट** बनाम **बी. एस. मुदप्पा और अन्य**[1] और **एम. आई. बिल्डर्स प्रा. लिमिटेड** बनाम **राधेश्याम और अन्य**[2] वाले मामलों में मास्टर योजना/क्षेत्रीय योजना के अतिक्रमण के मामलों में कड़ा मत व्यक्त किया है ।

30. हम यह भी अवेक्षित करते हैं कि राज्य के नीतिगत विनिश्चयों के विरुद्ध और सेवा मामलों के संबंध में भी बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं फाइल की जाती हैं । यह कहना घिसापिटा होगा कि सेवा मामलें, जनहित याचिकाओं के रूप में विचार किए जाने योग्य नहीं होते । इसी प्रकार, न्यायालय नीतिगत मामलों में भी मध्यक्षेप कर सकते है ।

(iv) नीतिगत मामले :

31. उच्चतम न्यायालय ने नीतिगत मामलों के संबंध में **बालकों, कर्मचारी संघ (पंजीकृत)** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है कि –

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 54.

[2] (1999) 6 एस. सी. सी. 464.

[3] (2002) 2 एस. सी. सी. 333.

'आर्थिक नीति या सुधार के क्षेत्र में न्यायालय उचित फोरम नहीं होता । जनहित का प्रत्येक मामला या जनहित से संबंधित उत्सुकता जनहित याचिका की विषय-वस्तु नहीं हो सकती । न्यायालयों से यह आशयित नहीं है कि वे देश का प्रशासन संचालित करें और न ही उनकों ऐसा करना चाहिए । न्यायालय केवल तब मध्यक्षेप करेंगे यदि संवैधानिक या कानूनी उपबंधों का स्पष्टतः अतिक्रमण हुआ हो या सरकार द्वारा अपने संवैधानिक या कानूनी कर्तव्यों का अननुपालन किया गया हो ।'

32. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **भारत संघ और अन्य** बनाम **जे. डी. सूर्यवंशी**[1] वाले मामले में **द डारेक्टरेड आफ फिल्म फेस्टिवल और अन्य** बनाम **गौरव अश्विन जैन और अन्य**[2] वाले मामले में व्यक्त किए गए पूर्ववर्ती विचार को अनुमोदन के साथ निम्नलिखित शब्दों का उद्धृत किया :-

"9. **डारेक्टरेड आफ फिल्म फेस्टिवल** बनाम **अश्विन जैन** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :-

'16. अब सरकारी नीति के न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि सुपरिभाषित हो गई है । न्यायालय अपीली प्राधिकारियों की भांति किसी नीति की शुद्धता, उपयुक्तता और समुचितता का परीक्षण नहीं करते और न ही वे ऐसा कर सकते हैं और न ही न्यायालय नीतिगत मामलों, जिनको प्रतिपादित करने का अधिकार कार्यपालिका है, के संबंध में कार्यपालिका को राय नहीं दे सकते । सरकार की किसी नीति का परीक्षण करते हुए न्यायिक पुनर्विलोकन की परिधि इस बात की जांच करना है कि क्या वह नीति नागरिकों के मूल अधिकारों का अतिक्रमण करती है या संविधान के उपबंधों के विरोध में है या किसी कानूनी उपबंध, जो प्रकटतः है के विरोध में है या प्रकटतः पक्षणतपूर्ण है । न्यायालय इस

[1] (2011) 13 एस. सी. सी. 167.
[2] (2007) 4 एस. सी. सी. 737.

आधार पर किसी नीति में मध्यक्षेप नहीं कर सकते कि वह नीति त्रुटिपूर्ण है या इस आधार पर नहीं कर सकते कि कोई उत्तम निष्पक्ष और बुद्धिमतापूर्ण अनुकल्प उपलब्ध है । किसी नीति की वैधता और न कि उसकी बुद्धिमतता या युक्तियुक्तता न्यायिक पुनर्विलोकन के अध्यधीन होती है ......।'"

(V) **सेवा मामले :**

33. उच्चतम न्यायालय ने **डा. दुर्योधन साहू और अन्य** बनाम **जितेन्द्र कुमार मिश्रा और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि सेवा मामलों में जनहित याचिका पर विचार नहीं किया जाना चाहिए ।

34. उच्चतम न्यायालय ने **गुरपाल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में यह मताभिव्यक्ति की है कि यद्‌यपि उच्चतम न्यायालय ने **दुर्योधन साहू** (उपरोक्त) वाले मामले में इस विधि को अधिकथित किया है कि तथाकथित जनहित याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए बल्कि सेवा मामलों को अंतर्वलित करने वाली जनहित याचिकाओं को न्यायालयों में अनिर्बंधित चलते रहने देना चाहिए और उन पर कभी-कभी ही विचार किया जाना चाहिए । माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उच्च न्यायालय उक्त विनिश्चय के आधार पर इन याचिकाओं पर कम से कम विचार करेंगे । **गुरपाल सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय के सुसंगत भाग को नीचे उद्धृत किया गया है :-

"7. ... यद्‌यपि **डा. दुर्योधन साहू** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि सेवा मामलों में जनहित याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए, फिर भी सेवा मामलों को अंतर्वलित करने वाली तथाकथित जनहित याचिकाएं न्यायालयों में अबाध रूप से फाइल होती रहती हैं और

---

[1] (1998) 7 एस. सी. सी. 273.

[2] (2005) 5 एस. सी. सी. 136.

उन पर आश्चर्यजनक रूप से विचार भी किया जाता है । उच्च न्यायालय जो न्यूनतम कर सकते हैं, वह यह है कि वे उनको उक्त विनिश्चय के आधार पर खारिज कर सकते हैं । अन्य रूचिकर पहलू यह है कि जनहित याचिकाओं में शासकीय दस्तावेज इस बात को उपदर्शित किए बिना संलग्न किए जाते हैं कि वे दस्तावेज याची के कब्जे में किस प्रकार से आए । ऐसे ही एक मामले में यह अवेक्षित किया गया कि इस प्रकार के दस्तावेजों के कब्जे के संबंध में अत्यंत रुचिकर उत्तर दिया गया था । उस मामले में यह अभिकथित किया गया था कि सड़क पर एक पैकेट पड़ा था और याची ने जब जिज्ञासावश उस पैकेट को उठाकर खोला, तो उसने पाया कि उस पैकेट में शासकीय दस्तावेज रखे हुए थे । जब कभी भी दस्तावेजों के कब्जे के स्पष्टीकरण के संबंध में इस प्रकार के निरर्थक अभिवाक् किए जाते हैं, तो न्यायालयों को न केवल याचिकाओं को खारिज कर देना चाहिए, बल्कि उदाहरण बनने योग्य लागत भी अधिरोपित करनी चाहिए । न्यायालयों के लिए यह वांछित होगा कि वे निरर्थक याचिकाओं की पहचान करे और उनको यथापूर्वोक्त लागत के साथ खारिज करें, ताकि यह संदेश सही दिशा में जाए कि याचियों ने याचिका को स्पष्ट आशय के साथ फाइल नहीं किया था जिसको न्यायालय अनुमोदित नहीं करता ।"

35. अब हम हमारे समक्ष उपस्थित मामले पर विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जनहित याचिकाओं के इस बंडल में एकमात्र अनुतोष जनोपयोगी भूमि के अतिक्रमण और अवैध निर्माण इत्यादि को हटाए जाने के संबंध में है । हमने इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में समस्त जनहित याचिकाओं की प्रार्थनाओं को उद्धृत किया है ।

36. याचियों द्वारा चाहे गए अनुतोषों के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निजी प्रत्यर्थियों, जिन्होंने जनोपयोगी भूमि, पैदल पथ (चक सड़कों), नालियों इत्यादि पर अतिक्रमण किया, के विरुद्ध शिकायतें फाइल की गई हैं ।

37. 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 लोक न्यूसेंस पर विचार करती है । धारा 133 के सुसंगत भाग निम्नलिखित हैं :-

"133. **न्यूसेंस हटाने के सशर्त आदेश** : (1) जब किसी जिला मजिस्ट्रेट या उपखंड मजिस्ट्रेट का या राज्य सरकार द्वारा इस निमित्त विशेषतया सशक्त किसी अन्य कार्यपालक मजिस्ट्रेट का किसी पुलिस अधिकारी से रिपोर्ट या अन्य इत्तिला प्राप्त होने पर और ऐसा साक्ष्य (यदि कोई हो) लेने पर, जैसा वह ठीक समझे, यह विचार है कि –

(क) किसी लोक स्थान या किसी मार्ग, नदी या जल श्रेणी से, जो जनता द्वारा विधिपूर्वक उपयोग में लाई जाती है या लाई जा सकती है, कोई विधि विरुद्ध बाधा या न्यूसेंस हटाया जाना चाहिए ; अथवा

XXX XXX XXX

(ग) किसी भवन का निर्माण या किसी पदार्थ का व्ययन, जिससे संभाव्य है कि अग्निकांड या विस्फोट हो जाए, रोक दिया या बंद कर दिया जाना चाहिए ; अथवा

(घ) कोई भवन, तंबू, संरचना या कोई वृक्ष ऐसी दशा में है कि संभाव्य है कि वह गिर जाए और पड़ोस में रहने या कारबार करने वाले या पास से निकलने वाले व्यक्तियों को उससे हानि हो और परिणामत: ऐसे भवन, तंबू या संरचना को हटाना या उसकी मरम्मत करना या उसमें आलंब लगाना या ऐसे वृक्ष को हटाना या उसमें आलंब लगाना आवश्यक है ;

(ङ) XXX XXX XXX

(च) XXX XXX XXX

तब ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसी बाधा या न्यूसेंस पैदा करने वाले या ऐसा व्यापार या उपजीविका चलाने वालों या किसी ऐसे माल या पण्य वस्तु को रखने वाले या ऐसे भवन, तंबू, संरचना, पदार्थ, तालाब, कुएं या उत्खात का स्वामित्व या कब्जा या नियंत्रण रखने वाले या ऐसे जीव जंतु या वृक्ष का स्वामित्व या कब्जा रखने वाले

व्यक्ति से यह अपेक्षा करते हुए सशर्त आदेश दे सकता है कि उतने समय के अंदर, जितना उस आदेश में निहित किया जाएगा, वह –

(i) ऐसी बाधा या न्यूसेंस को हटा दें ; अथवा

(ii) ऐसा व्यापार या उपजीविका चलाना छोड़ दे या उसे ऐसी रीति से बंद कर दे या विनियमित करे जैसी निर्दिष्ट की जाए अथवा ऐसे मामले या पण्य वस्तु को हटाए या उसको रखना ऐसी रीति से विनियमित करे जैसी निर्दिष्ट की जाए ; अथवा

(iii) ऐसे भवन का निर्माण रोके या बंद करे या ऐसे पदार्थ के व्ययन में परिवर्तन करे ; अथवा"

(iv) XXX XXX XXX

(v) XXX XXX XXX

(vi) XXX XXX XXX

(2) मजिस्ट्रेट द्वारा इस धारा के अधीन सम्यक् रूप से दिए गए किसी भी आदेश को किसी सिविल न्यायालय प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।"

38. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 133 के परिशीलन से मजिस्ट्रेट द्वारा लोक न्यूसेंस के संबंध में प्रयोग की जाने वाली अधिकारिता दर्शित होती है । मजिस्ट्रेट द्वारा इस शक्ति का प्रयोग पुलिस रिपोर्ट या अन्य सूचना के आधार पर किया जा सकता है । मजिस्ट्रेट लोक न्यूसेंस हटाए जाने के प्रयोजनार्थ आदेश पारित कर सकता है और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि विवाद सिविल प्रकृति का है तो मजिस्ट्रेट मामले को सिविल न्यायालय को निर्दिष्ट कर देता है । मजिस्ट्रेट 'अन्य सूचना' शब्द पर किसी व्यक्ति, जो लोक न्यूसेंस से व्यथित है, के संबंध में विचार कर सकता है । धारा 133 के अधीन शक्ति का प्रयोग नगरपालिका नाले पर किए गए और ग्राम के सामान्य मार्ग से अवरोध को हटाए जाने के संबंध में किया जा सकता है ।

39. इसी प्रकार से 2006 की उत्तर प्रदेश भू-राजस्व संहिता के अधीन भी तहसीलदार को ग्राम के सामान्य मार्ग, पथ या सामान्य भूमि के स्वतंत्र प्रयोग या जलधारा या जल स्रोत पर किए गए अवरोधों को हटाने की शक्ति प्राप्त है । अधिनियम की धारा 26 निम्नलिखित है :-

> "**26. अवरोध को हटाया जाना** : यदि तहसीलदार इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि किसी अवरोध के कारण ग्राम के सामान्य मार्ग, पथ या सामान्य भूमि या जलधारा या जलस्रोत के प्रयोग के संबंध में अवरोध उत्पन्न किया जाता है, तो वह ऐसे अवरोध को हटाए जाने के लिए निर्देशित कर सकता है और इस प्रयोजन के लिए बल प्रयोग, जो आवश्यक हो, कर सकता है और संबंध व्यक्ति से ऐसे अवरोध को हटाए जाने की लागत उस रीति में, जो विहित की जाए वसूल कर सकता है ।"

40. पूर्वोक्त दोनों उपबंध स्पष्टत: दर्शित करते हैं कि प्रत्येक नागरिक को रास्तों, सड़कों पर अतिक्रमण हटाए जाने के लिए पूर्वोक्त दोनों अधिनियमों के अधीन सक्षम प्राधिकारी के शरण में जाने के द्वारा प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है । हम ऐसे अधिकांश मामलों में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि याचियों ने ऊपर वर्णित अधिनियमों के अधीन उपलब्ध अनुतोष का आश्रय लिए बिना जनहित याचिका फाइल किए जाने के द्वारा किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्देश की ईप्सा करते हुए इस न्यायालय की शरण ली । बड़ी संख्या में फाइल की गई ये जनहित याचिकाएं इस न्यायालय का महत्वपूर्ण न्यायिक समय व्यर्थ करने वाली हैं ।

41. तद्नुसार, हमारा विचार है कि रास्तों, नालों इत्यादि, पर अतिक्रमण हटाए जाने के मामलों में लोगों को दंड प्रक्रिया संहिता और 2006 की उत्तर प्रदेश राजस्व संहिता के अधीन कानूनी अनुतोष उपलब्ध है और चूंकि ये अधिनियम स्थानीय निकायों जैसे कि नगर निगम, नगरपालिकाएं, नगर पंचायत, नगर परिषद् इत्यादि को शासित करते हैं, इसलिए सामान्यतया इन जनहित याचिकाओं पर विचार नहीं किया जाना चाहिए । यदि कानूनी प्राधिकारियों द्वारा कोई अकर्मण्यता

दर्शित की गई तो व्यथित व्यक्ति उचित निर्देश के लिए इस न्यायालय की शरण ले सकता है, किंतु जनहित याचिका के माध्यम से नहीं ।

42. माननीय उच्चतम न्यायालय ने बारंबार इस विचार पर जोर दिया है कि निरर्थक याचिकाओं पर भारी लागत अधिरोपित की जानी चाहिए । **फूल चंद्र और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] और **सुब्रत राय सहारा** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वालों मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि 'न्यायिक प्रणाली निरर्थक याचिकाओं द्वारा गंभीर रूप से प्रभावित होती है' । अविवेचित और निरर्थक मुकदमेबाजी के संबंध में इस न्यायालय की शरण में आने वाले मुकदमेबाजों को रोके जाने के लिए कुछ समाधान अंतर्वलित किया जाना चाहिए । इस बात को ध्यान में रखा जाना चाहिए कि प्रत्येक मुकदमेबाजी में निर्दोष व्यक्ति ही पीड़ित होता है । न्यायालय को उन राज्य अभिकरणों के विरूद्ध भी कार्यवाही करनी चाहिए, जो उच्चतम न्यायालय तक अंतहीन मुकदमेबाजी में अंतर्वलित रहते हैं । राज्य के कृत्यकारियों का यह आचरण विनिश्चय लेने में उत्तरदायित्व से बचने की मानसिकता के कारण है । उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि निरर्थक और लघु मामलों में कड़ाईपूर्वक कार्रवाई की जानी चाहिए और भारी लागत अधिरोपित की जानी चाहिए, चूंकि इस प्रकार की मुकदमेबाजी को प्रोत्साहित किए जाने के कारण न्याय के उद्देश्य प्रभावित होते हैं । हम इस संबंध में **फूल चंद्र** (उपरोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट करते हैं :-

> "12. किसी भी देश के सर्वोच्च न्यायालय के कामकाज में ये सभी अवरोधक हैं । वर्तमान में मुकदमेबाजों द्वारा सभी प्रकार के तुच्छ और बेवकूफी भरे मामलों के संबंध में इस न्यायालय को सम्मिलित करते हुए, सभी न्यायालयों की शरण में आने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है, जिसके परिणामस्वरूप लोकधन और समय

[1] (2014) 13 एस. सी. सी. 112.

[2] (2014) 8 एस. सी. सी. 470.

की बर्बादी होती है । ऐसे सभी मामलों की बारीकी से संवीक्षा किए जाने पर यह प्रकट होता है कि इस प्रकार के मामले फाइल किए जाने का कोई परोक्ष औचित्य भी नहीं है । यह अत्यंत दुख का विषय है कि न्यायालय का समय जो अत्यधिक मूल्यवान होता है, बढ़ते हुए मुकदमों की संख्या के बाद भी इस प्रकार के मामलों में व्यर्थ होता रहता है । ऐसी निरर्थक मुकदमेबाजी को तुरंत रोके जाने की आवश्यकता है । हमारे विचार में इस प्रकार के अनेक मामलों से बचा जा सकता है यदि विद्वान् काउंसेल, जो न्यायालय के जिम्मेदार अधिकारी भी हैं और जिनसे यह प्रत्याक्षा की जाती है कि वे न्यायालय की सहायता करें, अपने मुवक्किलों को उचित सलाह दें । बार को इस बात को महसूस करना होगा कि बेंच के ऊपर न्याय वितरण का महत्वपूर्ण बोझ है, जो उनके भी ऊपर इस बोझ को वहन करने का दायित्व अधिरोपित करता है और यह इस बात पर विचार करना उनका कर्तव्य भी है कि इस बोझ को बिना किसी आवश्यकता के असहनीय न बनाया जाए । इस देश के न्यायाधीश शीघ्र न्याय वितरण की समस्या के समाधान के लिए अनेक विपरीत परिस्थितियों के विरुद्ध बहादुरी के साथ संघर्ष कर रहे हैं, किंतु बार के जेंटलमेन के सहयोग के बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता ।

13. अब समय आ गया है कि न्यायालयों को ऐसे निरर्थक मुकदमे फाइल करने वालों के साथ कड़ाईपूर्वक निपटना होगा और जब तक कि हम यह सुनिश्चित नहीं करते कि गलत कार्य करने वालों को लाभ प्रदान करने या निरर्थक मुकदमेबाजी से अनुचित लाभ लेने वालों से इनकार किया जाए, तब तक निरर्थक और अनचाही मुकदमेबाजी को नियंत्रित करना कठिन होगा । न्यायालयों को इस प्रकार की मुकदमेबाजी को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ इस बात को सुनिश्चित करना होगा कि ऐसा कोई लाभ या प्रयोजन नहीं है जिसे पक्षों और उनके विद्वान् काउंसेलों, जो गैर-जिम्मेदाराना तरीके से कार्य करते हैं, पर अनुकरणीय लागत अधिरोपित किए जाने के द्वारा सुनिश्चित किया जा सके [देखें

वरिन्दरपाल सिंह **बनाम** एम. आर. शर्मा, (1986) सप्ली. एस. सी. सी. 729, रामेश्वरी देवी **बनाम** निर्मला देवी (2011) 8 एस. सी. सी. 249 = (2011) 4 एस. सी. सी. (सिविल) 1 और गुड़गांव ग्रामीण बैंक **बनाम** खजानी (2012) 8 एस. सी. सी. 781 = ए. आई. आर. 2012 एस. सी. 2881] ।"

43. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **तहसील पुणावाला** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए नवीनतम निर्णय में जनहित याचिका की अधिकारिता के दुरुपयोग पर विचार किया है । माननीय न्यायालय ने निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की :-

"98. जनहित याचिका का दुरुपयोग न्यायिक प्रक्रिया के लिए गंभीर मामला है । यह न्यायालय और उच्च न्यायालयों, दोनों ही जनहित याचिकाओं से भरी पड़ी हैं और लंबित मुकदमों के बोझ तले दबी हुई हैं । निरर्थक या प्रेरित याचिकाएं, जो अप्रत्यक्ष रूप से जनहित का अवलंब लेकर फाइल की जाती है, उस समय और ध्यानाकर्षण दुरुपयोग करती हैं, जिनका सदुपयोग न्यायालयों द्वारा वास्तविक कारणों के बाबत किया जाना चाहिए । इस न्यायालय के समक्ष लंबित मामलों की एक लंबी सूची है, जिनमें नागरिकों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का प्रश्न अंतर्वलित है । वे लोग, जो विचारण या दोषसिद्धि के आदेशों के विरुद्ध अपीलों के निस्तारण की प्रतीक्षा कर रहे हैं, शीघ्र न्याय की विधि सम्मत प्रत्याक्षा रखते हैं । यह न्याय की विडम्बना है कि विधिक प्रणाली के संसाधनों का उपयोग बड़ी संख्या में फाइल की गई उन दिशाहीन याचिकाओं के लिए किया जा रहा है, जिनको तथाकथित रूप से जनहित के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया, किंतु जो संवीक्षा किए जाने के पश्चात् निजी, कारबार या राजनैतिक उद्देश्यों को प्रोन्नत किए जाने केलिए फाइल की गई पाई जाती हैं । इसमें (जनहित याचिकाओं में) मुकदमेबाजी में निहित हित रखने वालों का उद्योग फल फूल रहा है । इस बात

[1] (2018) 6 एस. सी. सी. 72.

का घोर खतरा उत्पन्न हो गया है कि यदि इस स्थिति को निरंतर बने रहने दिया जाता है, तो यह स्थिति न्यायालय की योग्यता को, उसके समय और संसाधनों को ऐसे मामलों, जो विधिसम्मत रूप से न्यायालय द्वारा ध्यान दिए जाने की अपेक्षा करते हैं, अपकर्षण करने के द्वारा न्यायिक प्रणाली की कार्यकुशलता को गंभीर रूप से प्रभावित करेगी । इससे भी अधिक खराब स्थिति तब उत्पन्न होगी, जब इस प्रकार की याचिकाएं न्यायिक प्रक्रिया की विश्वसनीयता के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करेंगी । इस प्रकार की याचिकाएं अन्य संस्थाओं की विश्वसनीयता के लिए खतरा उत्पन्न करने की संभावनाएं भी सृजित करती हैं और लोकतंत्र और विधिसम्मत शासन में जनता के विश्वास को घटाती हैं । यह तब घटित होगा जब न्यायालयीय अभिकरण न्यायेत्तर गतिविधियों को सुझाने के लिए प्रयोग किया जाने लगेगा । कारबार संबंधी प्रतिस्पर्धाओं के मामलों का निवारण माल और सेवाओं के प्रतियोगी बाजार के किया जाना चाहिए । राजनैतिक प्रतिस्पर्धा का निवारर्ण लोकतंत्र के महान कक्ष में किया जाना चाहिए, जब मतदाता अपने प्रतिनिधियों को विजयी बनाने या उनको पद से हटाने के लिए मतदान करते है । न्यायालय विधिक अधिकारों और हकों के बारे में विवादों का निवारण करते हैं । न्यायालय विधिसम्मत शासन का संरक्षण करते हैं । इस बात का खतरा है कि न्यायिक प्रक्रिया मात्र एक पहेली बनकर रह जाएगी, विधिक प्रांचले के बाहर के विवाद न्यायिक स्थान पर कब्जा कर लेंगे ।"

44. हमारा पक्षों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों, ऊपरवर्णित निर्णयज विधियों और हमारे द्वारा ऊपर उल्लिखित कारणों पर सावधनीपूर्वक विचार करने के पश्चात् यह विचार है कि समस्त ऊपरवर्णित जनहित याचिकाएं गुणागुण से रहित हैं । जैसी कि ऊपर चर्चा की गई, याचियों ने लघु या ऐसे मामलों के निस्तारण के लिए इस न्यायालय की शरण ली है, जिनके संबंध में उनको प्रभावी आनुकल्पिक अनुतोष उपलब्ध है । इन याचिकाओं पर विचार करना मूल्यवान

न्यायिक समय को व्यर्थ करना होगा । पर्यावरण संरक्षण, लोक जीवन के स्वच्छकरण, लोक न्यास भंग, जन उपयोगी सेवाओं को भवन निर्माताओं इत्यादि के निजी प्रयोग में परिवर्तित किए जाने से संबंधित बड़ी संख्या में जनहित याचिकाएं लंबित है, वे वास्तविक जनहित याचिकाएं वर्षों से लंबित हैं और उनमें से कुछ निरर्थक होने जा रही है चूंकि अधिकांश न्यायिक समय लघु मामलों पर आधारित विवाद्यकों को उठाने वाली बड़ी संख्या में फाइल की गई नई जनहित याचिकाओं, जो लोक महत्व के विवाद्यक नहीं उठाती, पर विचार करने में व्यर्थ हो जाता है । अत: अब समय आ गया है जब इस न्यायालय को निरर्थक और लघु मामलों के प्रयोजनार्थ फाइल की जाने वाली जनहित याचिकाओं को हतोत्साहित करना चाहिए ।

45. तद्नुसार सभी जनहित याचिकाएं खारिज की जाती हैं । तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि इन सभी जनहित याचिकाओं के खारिज किए जाने के कारण इनमें उठाए गए मुद्दों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा । याचियों को यह स्वतंत्रता प्रदान की जाती है कि वे विधि के अंतर्गत उपलब्ध अन्य अनुतोष प्राप्त करने के लिए प्रयास करे ।

46. लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

याचिकाएं खारिज की गई ।

शु.

अनुराग श्रीवास्तव और अन्य

बनाम

भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण और अन्य

(2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 107)

तारीख 6 सितंबर, 2019

न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार सिंह बघेल और न्यायमूर्ति पंकज भाटिया

राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 (1956 का 48) – धारा 3-घ और 3-छ(3) – भूमि अधिग्रहण की घोषणा – प्रतिकर के विनिर्धारण हेतु दो स्थानीय समाचारपत्रों, जिनमें से एक वर्णाकुलर भाषा में होगा, में समस्त हितबद्ध व्यक्तियों से अर्जित की जाने वाली भूमि के बाबत दावे आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना का प्रकाशन – प्रत्यर्थियों का पक्षकथन कि धारा 3-छ(3) के अधीन प्रकाशित सूचना में भूलवश धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया, किंतु कोई शुद्धिपत्र जारी नहीं किया गया – प्रत्यर्थियों ने अनुपूरक खंडन शपथपत्र फाइल किया किंतु सूचना को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया – धारा 3-घ के अधीन सूचना को धारा 3-छ(3) के अधीन प्रकाशित सूचना नहीं माना जा सकता – धारा 3-छ(3) के अधीन विहित प्रक्रिया का पालन न किए जाने के कारण अधिनिर्णय अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि याची संख्या 3 अपने दो पुत्रों, जो इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 हैं, के साथ जिला मिर्जापुर की तहसील लालगंज के ग्राम बबुराभैरव दयाल स्थित भूखंड संख्या 257, 448 और 450 का स्वामी है । याचियों का यह दावा है कि वे भूखंड संख्या 448-ख और 450 पर निर्मित रिहायशी मकान के स्वामी हैं । याचियों के रिहायशी मकान में एक बगीचा भी है, जिस पर विभिन्न प्रकार के वृक्षों का रोपण भी किया गया है । उनका रिहायशी मकान मुख्य मार्ग से सटा हुआ है । याचियों का दावा है कि वे कृषि प्रयोजनों के लिए भूखंड संख्या 448, 257 और 450 का प्रयोग नहीं कर रहे हैं । भूखंड संख्या 448 और 450 को गैर कृषि प्रयोग के कारण चकबंदी

कार्यवाही के दौरान चक भूमि से बाहर कर दिया गया था । उन्होंने यह अभिकथित किया कि याचियों ने भूखंड संख्या 257 के ऊपर एक स्थाई भवन का निर्माण किया है, जिसको नौकर के क्वार्टर और जानवर अर्थात् गाय, भैंस इत्यादि रखे जाने के लिए प्रयोग किया जाता है । प्रत्यर्थी संख्या 1 भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण ने जिला मिर्जापुर (वाराणसी) के हनुमाना खंड में 98.640 किलोमीटर से 140.265 किलोमीटर तक सड़क चौड़ी किए जाने की परियोजना आरंभ की । इस संबंध में तारीख 15 जनवरी, 2018 को एक अधिसूचना भारत के राजपत्र (असाधारण) में 1956 के अधिनियम की धारा 3-क के अधीन प्रकाशित की गई । याचियों के भूखंड संख्या 257, 448 और 450, जिनकी माप क्रमशः 0.0236, 0.0450 और 0.0260 हेक्टेयर है, को अधिसूचना में दर्शित भूमि को अर्जित किए जाने के आशय की घोषणा करते हुए अधिसूचना में सम्मिलित किया गया । उक्त अधिसूचना दो समाचार पत्रों अर्थात् दैनिक जागरण और टाइम्स आफ इंडिया में तारीख 3 फरवरी, 2018 को संप्रकाशित की गई । तत्पश्चात् 1956 के अधिनियम की धारा 3-घ के अधीन अधिसूचना को तारीख 2 अप्रैल, 2018 को संप्रकाशित किया गया । याचियों की शिकायत यह है कि प्रत्यर्थी ने अत्यधिक शीघ्रता करते हुए 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के उपबंधों के अधीन बिना कार्रवाई किए प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए अग्रसर हो गए और उन्होंने तारीख 19 सितंबर, 2018 का अधिनिर्णय पारित कर दिया । याचियों ने यह भी अभिकथित किया है कि भू-स्वामियों से आक्षेप आमंत्रित करते हुए किसी भी समाचार पत्र में कोई प्रकाशन नहीं किया गया और याचियों, जिनकी भूमि अर्जित की गई, को पर्याप्त प्रतिकर का संदाय नहीं किया गया । याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – खंडन शपथपत्र के पैराग्राफ 11 के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि इस बाबत असत्य कथन किया गया है कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना प्रकाशित की गई थी । प्रत्यर्थियों ने उक्त कथन के समर्थन में शासकीय राजपत्र में संप्रकाशित अधिसूचना को खंडन शपथपत्र के संलग्नक सीए-1 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया है । शासकीय राजपत्र में संप्रकाशित उक्त अधिसूचना

के परिशीलन से दर्शित होता है कि यह धारा 3-घ के अधीन जारी की गई सूचना थी न कि धारा 3-छ के अधीन जारी की गई सूचना, जैसाकि खंडन शपथपत्र के पैराग्राफ 11 में भी उल्लेख किया गया है । तत्पश्चात् एक अनुपूरक खंडन शपथपत्र भी यह स्पष्टीकरण देते हुए फाइल किया गया है कि शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना में इस धारा को त्रुटि के कारण धारा 3-घ दर्शित कर दिया गया है और वास्तव में यह धारा 3-छ(3) होनी चाहिए । हमारा विचार है कि उक्त स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता । हम पूर्वोक्त अभिवचनों के परिशीलन से यह मताभिव्यक्ति करने के लिए आनत हैं कि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के अधिकारियों ने इस विवाद्यक से बचने का प्रयास किया और उनकी तरफ से किया गया यह कार्य उचित कार्य नहीं था कि वे अपने खंडन शपथपत्र में बचने वाला और अस्पष्ट उत्तर देते । भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण एक कानूनी प्राधिकरण है और उससे यह प्रत्याक्षा नहीं की जा सकती कि वे एक सामान्य मुकदमेबाज की भांति बर्ताव करें । उनका यह कर्तव्य था कि वे इस न्यायालय के समक्ष निष्पक्षतापूर्वक सत्य तथ्यों को प्रस्तुत करते । अनुपूरक खंडन शपथपत्र में यह स्वीकर किया गया है कि त्रुटि के कारण धारा 3-छ(3) के बजाय धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया है । 1997 के अधिनियम संख्या 16 द्वारा लाए गए संशोधन की योजना, जिसके द्वारा धारा 3-क से 3-छ को 1956 के अधिनियम में अंत:स्थापित किया गया, से स्पष्टत: दर्शित होता है कि इस अधिसूचना को तीन प्रक्रमों में प्रकाशित किया जाना होता है : प्रथमत: धारा 3-क(2) के अधीन भूमि के अर्जन के आशय की घोषणा किया जाना और आक्षेप आमंत्रित किया जाना : द्वितीयत:, धारा 3-ध(2) के अधीन इस बाबत घोषणा के लिए कि भूमि का अर्जन किया जाना चाहिए और इस घोषणा के किए जाने के पश्चात् भूमि पूर्णतया केंद्र में निहित हो जाती है ; और तृतीयत:, धारा 3-झ(3) के अधीन भूमि में हितबद्ध समस्त व्यक्तियों से दावे आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना दो स्थानीय समाचारपत्रों में प्रकाशित किया जाना अपेक्षित होता है । इस बात को स्वीकार किया गया है कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-क और 3-घ के अधीन केवल दो सूचनाएं प्रकाशित की गई हैं । प्राधिकारियों द्वारा खंडन शपथपत्र के साथ कोई अन्य सूचना अभिलेख

पर प्रस्तुत नहीं की गई है । जहां तक इस प्रकथन का प्रश्न है कि शासकीय राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित किए जाने में भूलवश धारा 3-छ के बजाय धारा 3-घ प्रकाशित कर दी गई, को स्वीकार नहीं किया जा सकता । यदि तारीख 29 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित दोनों समाचारपत्रों में कोई त्रुटि थी, तो प्रत्यर्थियों को शुद्धि पत्र जारी करना चाहिए था । इस गलती को शुद्ध करने के लिए ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की गई । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस मामले के तथ्य शारदा यादव वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अभिकथित विधि द्वारा पूर्णतः आच्छादित हैं । इसी प्रकार की दलीलें उस मामले में भी दी गई थीं कि धारा 3-घ के अधीन सूचना को धारा 3-छ के अधीन सूचना मान लिया जाए । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थियों का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना में भूलवश धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया, किंतु कोई शुद्धिपत्र जारी नहीं किया गया । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों ने अनुपूरक खंडन शपथपत्र फाइल करने के बजाय तारीख 29 अप्रैल, 2018 की सूचना को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया है । हम ऊपर उल्लिखित समस्त कारणों को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ के अधीन द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा पारित तारीख 29 सितंबर, 2018 का अधिनिर्णय 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना पारित किया गया है, इसलिए इस अधिनिर्णय को उस सीमा तक अभिखंडित किया जाता है । हम याचियों को 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के निबंधनों के अनुसार सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उनके इस दावे के संबंध में कि उनकी भूमि गैर कृषि भूमि है जिस पर निर्माण विद्यमान है, आक्षेप फाइल करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं । सक्षम अधिकारी उनके आक्षेपों पर विचार करेगा और याचियों को अवसर प्रदान करने के पश्चात् विधि अनुसार अधिनिर्णय पारित करेगा । यह कार्रवाई अविलंब की जाए, अधिमानतः इस आदेश की संसूचना की तारीख से चार माह की अवधि के भीतर । (पैरा 19, 20, 21, 22, 24 और 25)

आरंभिक रिट अधिकारिता : 2019 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका संख्या 107.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री श्याम नारायण राय, प्रशांत मिश्रा और रविकांत

प्रत्यर्थियों की ओर से अपर महासालिसीटर, मुख्य स्थायी काउंसेल और श्री नीरज दुबे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति प्रदीप कुमार सिंह बघेल ने दिया ।

न्या. बघेल – याचियों ने यह रिट याचिका द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा उनकी भूमि के संबंध में, जिसको 1956 के राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम के उपबंधों के अधीन अर्जित कर लिया गया है, तारीख 19 सितंबर, 2018 को पारित अधिनिर्णय से व्यथित होकर फाइल की है ।

2. मामले के तथ्य इस प्रकार हैं :–

"याची संख्या 3 अपने दो पुत्रों अर्थात् अनुराग श्रीवास्तव और अरविन्द श्रीवास्तव, जो इस रिट याचिका में प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 हैं, के साथ जिला मिर्जापुर की तहसील लालगंज के ग्राम बबुराभैरव दयाल स्थित भूखंड संख्या 257,448 और 450 का स्वामी है । याचियों का यह दावा है कि वे भूखंड संख्या 448-ख और 450 पर निर्मित रिहायशी मकान के स्वामी हैं । याचियों के रिहायशी मकान में एक बगीचा भी है, जिसमें विभिन्न प्रकार के वृक्षारोपाण भी किया गया है । उनका रिहायशी मकान मुख्य मार्ग से सटा हुआ है । याचियों का दावा है कि वे कृषि प्रयोजनों के लिए भूखंड संख्या 448, 257 और 450 का प्रयोग नहीं कर रहे हैं । भूखंड संख्या 448 और 450 को गैर कृषि प्रयोग के कारण चकबंदी कार्यवाही के दौरान चक भूमि से बाहर कर दिया गया था । उन्होंने यह अभिकथित किया कि याचियों ने भूखंड संख्या 257 के ऊपर एक स्थाई भवन का निर्माण किया है, जिसको नौकर के क्वार्टर और जानवर अर्थात् गाय, भैंस इत्यादि रखे जाने के लिए प्रयोग किया जाता है ।"

3. प्रत्यर्थी संख्या 1 भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण ने जिला

मिर्जापुर (वाराणसी) के हनुमाना खंड) में 98.640 किलोमीटर से 140.265 किलोमीटर तक चौड़ी किए जाने की परियोजना आरंभ की । इस संबंध में तारीख 15 जनवरी, 2018 को एक अधिसूचना भारत के राजपत्र (असाधारण) में 1956 के अधिनियम की धारा 3-क के अधीन प्रकाशित की गई थी । याचियों के भूखंड संख्या 257, 448 और 450 जिनकी माप क्रमशः 0.0236, 0.0450 और 0.0260 हेक्टेयर है, को उक्त अधिसूचना में दर्शित भूमि को अर्जित किए जाने के आशय की घोषणा करते हुए अधिसूचना में सम्मिलित किया गया । उक्त अधिसूचना दो समाचार पत्रों अर्थात् दैनिक जागरण और टाइम्स आफ इंडिया में तारीख 3 फरवरी, 2018 को संप्रकाशित की गई थी । तत्पश्चात् 1956 के अधिनियम की धारा 3-घ के अधीन अधिसूचना को तारीख 2 अप्रैल, 2018 को संप्रकाशित किया गया था ।

4. याचियों की शिकायत यह है कि प्रत्यर्थियों ने अत्यधित शीघ्रता करते हुए 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के उपबंधों के अधीन बिना कार्यवाही किए हुए प्रतिकर का निर्धारण करने के लिए अग्रसर हो गए और उन्होंने तारीख 19 सितंबर, 2018 का अधिनिर्णय पारित कर दिया । याचियों ने यह भी अभिकथित किया है कि भू-स्वामियों से आक्षेप आमंत्रित करते हुए किसी भी समाचार पत्र में कोई प्रकाशन नहीं किया गया और याचियों, जिनकी भूमि अर्जित की गई, को पर्याप्त प्रतिकर का संदाय नहीं किया गया ।

5. रिट याचिका में यह प्रकथन भी किया गया है कि याचियों की भूमि का अर्जन उनको सुनवाई का कोई अवसर प्रदान किए बिना कर लिया गया है और वह भी उनकी भूमि के संबंध में पर्याप्त प्रतिकर का विनिर्धारण किए बिना । याचियों का दावा है कि भूमि के मूल्यांकन, जिसकी कीमत जिला मजिस्ट्रेट द्वारा तैयार की गई सरकिल दर के अनुसार 6,500/- रुपए प्रतिवर्ग मीटर से अधिक है, का अनदेखा करते हुए 218/- रुपए प्रति वर्ग मीटर की दर से अत्यधिक कम रकम के प्रतिकर का अधिनिर्णय पारित कर दिया गया है । उन्होंने यह भी अभिकथित किया कि याचियों की भूमि को इस साक्ष्य का अनदेखा करते हुए कृषि भूमि प्रतीत किया गया है कि इस भूमि के ऊपर पक्का मकान स्थित है और भूमि का प्रयोग गैर कृषि प्रयोजनों के लिए किया जा रहा

है और यह भूमि सड़क से अत्यधिक लघु दूरी के भीतर स्थित है । याचियों ने अभिलेख पर यह प्रदर्शित किए जाने के प्रयोजनार्थ फोटोग्राफ भी प्रस्तुत किए हैं कि अर्जित भूमि के ऊपर एक स्थाई संरचना विद्‌यमान है ।

6. प्रथम प्रत्यर्थी द्‌वारा अनुपूरक शपथपत्र फाइल किया गया । प्रथम प्रत्यर्थी द्‌वारा यह पक्षकथन किया गया कि याचियों की भूमि को लोकहित में अर्जित किया गया है । प्रथम प्रत्यर्थी द्‌वारा यह अभिकथित भी किया गया है कि याचियों के भूखंडों पर वृक्ष विद्‌यमान हैं । उसने आगे अभिकथित किया है कि राजस्व अभिलेखों में किसी भी भूमि का उल्लेख गैर कृषि भूमि के रूप में नहीं किया गया है । प्रश्नगत भूमि को चार लेन सड़क के निर्माण के लिए अर्जित किया गया है और लखनऊ की स्टडी प्वाइंट समिति और तहसील कर्मचारियों द्‌वारा याचियों की भूमि के अर्जन के संबंध में एक संयुक्त सर्वेक्षण किया गया था । उन्होंने याचियों को प्रदान किया गया प्रतिकर पर्याप्त बताया था ।

7. रिट याचिका के पैरा 12 में किए गए प्रकथनों के उत्तर में कि प्रत्यर्थी 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के उपबंधों के अधीन कोई सूचना प्रकाशित किए बिना प्रतिकर विनिर्धारण के लिए अग्रसर हो गए, खंडन शपथपत्र में अस्पष्ट और भ्रामक उत्तर दिया गया है । तथापि, प्रथम प्रत्यर्थी की तरफ से अनुपूरक खंडन शपथपत्र भी फाइल किया गया है, जिसमें यह उल्लेख किया गया है कि तारीख 29 अप्रैल, 2018 की अधिसूचना में अनवधानतावश धारा 3-छ(3) के बजाय धारा 3-घ(1) का उल्लेख कर दिया गया था, जो कि एक त्रुटि थी ।

8. हमने विद्‌वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रविकांत को सुना, जिनकी सहायता याचियों के विद्‌वान् काउंसेल श्री श्यामनारायण राय द्‌वारा की गई और प्रथम प्रत्यर्थी-भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के विद्‌वान् काउंसेल श्री नीरज दुबे को सुना ।

9. याचियों के विद्‌वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन कोई सूचना प्रकाशित नहीं की गई है और प्राधिकारियों ने प्रतिकर का विनिर्धारण आक्षेप आमंत्रित किए

बिना कर दिया है । 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना आज्ञापक है, इसलिए प्रतिकर के विनिर्धारण की संपूर्ण कार्यवाही के कारण याचियों के हितों पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । उन्होंने दलील दी कि याचियों को प्रदान किया गया प्रतिकर पूर्णतया अपर्याप्त है और भ्रांत उपधारणा पर आधारित है, और यह शक्ति का मनमाना प्रयोग है । याची के विद्वान् काउंसेल ने **शारदा यादव** बनाम **भारत संघ और अन्य** (2014 की रिट याचिका संख्या 3046, जो तारीख 18 जुलाई, 2014 को निर्णीत की गई) वाले मामले में इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय का अवलंब लिया ।

10. प्रथम प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री नीरज दुबे ने निवेदन किया कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना तारीख 29 अप्रैल, 2018 को संप्रकाशित की गई थी, किंतु उक्त सूचना में भूलवश धारा 3-घ का उल्लेख हो गया था ।

11. हमने पक्षों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

12. निर्विवाद रूप से याची भूखंड संख्या 257, 448 और 450, जिनको प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा राष्ट्रीय राजमार्ग को चौड़ा किए जाने के प्रयोजनार्थ अर्जित कर लिया गया है के स्वामी हैं । 1956 का अधिनियम कतिपय राजमार्गों को राष्ट्रीय राजमार्गों के रूप में घोषित किए जाने के और उनसे सहबद्ध मामलों के प्रयोजनार्थ उपबंधित किए जाने के लिए अधिनियमित किया गया है । 1997 के (संशोधन) अधिनियम संख्या 16 द्वारा धारा 3, 3-क, 3-ख, 3-ग, 3-घ, 3-ङ., 3-च, 3-छ, 3-ज, 31 और 3-त्र को 1956 के अधिनियम में अंत:स्थापित किया गया है । धारा 3-क किसी भूमि, जो लोक प्रयोजन के लिए किसी राष्ट्रीय राजमार्ग या उसके किसी भाग के निर्माण, रखरखाव, प्रबंधन या क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित है, को अर्जित किए जाने के आशय की घोषणा के लिए केंद्र सरकार को सशक्त करती है । शासकीय राजपत्र में उक्त भूमि को अर्जित किए जाने के आशय की घोषणा करते हुए अधिसूचना संप्रकाशित की जाती है । धारा 3-क की उपधारा (2)

उपबंधित करती है कि अधिसूचना में भूमि के संक्षिप्त विवरण का भी उल्लेख किया जाता है । धारा 3-क की उपधारा (3) के अनुसार शासकीय राजपत्र के अतिरिक्त एक सूचना दो स्थानीय समाचारपत्रों में भी प्रकाशित की जाती है । धारा 3-ख निरीक्षण, सर्वेक्षण, नाप-जोख, मूल्यांकन, सीमांकन इत्यादि के लिए प्राधिकारियों को सशक्त करती है । धारा 3-ग भू-स्वामियों को धारा 3-क की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के संप्रकाशन की तारीख से 21 दिनों के भीतर उनके आक्षेप फाइल करने का अवसर प्रदान करती है । इस प्रकार से फाइल किए गए आक्षेपों पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा विचार किया जाता है और सक्षम प्राधिकारी अवसर प्रदान करने के पश्चात् आक्षेपों को या तो मंजूर कर सकता है या नामंजूर । धारा 3-घ उपबंधित करती है कि यदि धारा 3-क की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन के पश्चात् सक्षम प्राधिकारी द्वारा विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई आक्षेप प्राप्त नहीं किया जाता या यदि आक्षेप फाइल किया जाता है और उसको सक्षम प्राधिकारी द्वारा नामंजूर कर दिया जाता है, तो सक्षम प्राधिकारी द्वारा केंद्र सरकार के समक्ष एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी, जिसके द्वारा शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा की जाएगी किभूमि का अर्जन धारा 3-क की उपधारा (1) में उल्लिखित प्रयोजनों के लिए किया जाना चाहिए । धारा 3-घ की उपधारा (2) उपबंधित करती है कि इस धारा अर्थात् धारा 3-घ(1) में घोषणा के संप्रकाशन के पश्चात् भूमि समस्त भारों से मुक्त होकर केंद्र सरकार में निहित हो जाती है । धारा 3-ड. यह उपबंधित करती है कि यदि एक बार भूमि केंद्र सरकार में निहित हो जाती है और प्राधिकारी द्वारा धारा 3-छ के अधीन भूमि का प्रतिकर विनिर्धारित कर दिया जाता है और उसको जमा कर दिया जाता है, तो सक्षम प्राधिकारी भूमि के स्वामी, जो भूमि के कब्जे में है, को सक्षम प्राधिकारी या उसके द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी अन्य व्यक्ति को भूमि का अभ्यपर्ण करने या कब्जा प्रदान करने के लिए सूचना जारी कर सकता है । धारा 3-च प्राधिकारी को राष्ट्रीय राजमार्ग के रखरखाव या प्रबंधन या उसके निर्माण के लिए अधिकार प्रदान करती है ।

13. धारा 3(छ) के अधीन उस भूमि के संबंध में प्रतिकर का

विनिर्धारण किया जाता है, जिसका अर्जन किया जाता है । धारा 3(छ) की उपधारा (3) उपबंधित करती है कि सक्षम प्राधिकारी रकम के विनिर्धारण के लिए अग्रसर होने के पूर्व दो स्थानीय समाचारपत्रों, जिनमें से एक वर्णाकुलर भाषा में होगा, में अर्जित की जाने वाली भूमि में हितबद्ध समस्त व्यक्तियों से दावे आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना जारी करेगा ।

14. चूंकि वर्तमान विवाद सूचना के प्रकाशन की अपेक्षा के संबंध में है, 1956 की अधिनियम की धारा 3-घ और 3-छ हमारे प्रयोजन के लिए सुसंगत है, जिनको नीचे उद्धृत किया गया है :-

"**3-घ. अर्जन की घोषणा – (1)** जहां धारा 3-ग की उपधारा (1) के अधीन सक्षम प्राधिकारी को उसने विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर कोई आक्षेप नहीं किया गया है या जहां सक्षम प्राधिकारी ने उस धारा की उपधारा (2) के अधीन आक्षेप को नामंजूर कर दिया है, वहां सक्षम प्राधिकारी तद्नुसार केंद्रीय सरकार को एक रिपोर्ट यथासक्य शीघ्र प्रस्तुत करेगा और ऐसी रिपोर्ट की प्राप्ति पर केंद्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा यह घोषणा करेगी कि भूमि धारा 3-क की उपधारा (1) में उल्लिखित प्रयोजन या प्रयोजनों के अर्जित की जाए ।

(2) उपधारा (1) के अधीन घोषणा के प्रकाशन पर भूमि आत्यंतिक रूप से सभी विल्लंगमों से मुक्त होकर केंद्रीय सरकार में निहित हो जाएगी ।

(3) जहां किसी भूमि की बाबत अधिसूचना उसके अर्जन के लिए धारा 3-क की उपधारा (1) के अधीन प्रकाशित की गई है, किंतु उपधारा (1) के अधीन कोई घोषणा उस अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर प्रकाशित नहीं की गई है, वहां उक्त अधिसूचना का कोई प्रभाव नहीं होगा :

परंतु उक्त एक वर्ष की अवधि की संगणना करने में ऐसी अवधि या अवधियों को, जिनके दौरान धारा 3-क की उपधारा (1) के अधीन जारी की गई अधिसूचना के अनुसरण में की गई कोई

कार्रवाई या कार्यवाही न्यायालय के आदेश द्वारा रोक दी जाती है, अपवर्जित किया जाएगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा की गई किसी घोषणा को किसी न्यायालय में या किसी अन्य प्राधिकारी द्वारा प्रश्नगत नहीं किया जाएगा ।

3.छ. प्रतिकर के रूप में संदेय रकम का अवधारण – (1) जहां इस अधिनियम के अधीन कोई भूमि अर्जित की जाती है, वहां ऐसी रकम संदत्त की जाएगी, जो सक्षम प्राधिकारी के आदेश द्वारा अवधारित हो ।

(2) जहां इस अधिनियम के अधीन किसी भूमि पर उपयोग का अधिकार या सुखाचार की प्रकृति का कोई अधिकार अर्जित किया जाता है, वहां उस रकम के स्वामी को और किसी ऐसे अन्य व्यक्ति को, जिसका उस संपत्ति में उपभोग का अधिकार ऐसे अर्जन के कारण किसी भी रूप में प्रभावित हुआ है, ऐसी रकम संदत्त की जाएगी जो उस भूमि के लिए उपधारा (1) के अधीन अवधारित रकम के दस प्रतिशत पर संगणित की गई हो ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन रकम का अवधारण करने के पूर्व सक्षम प्राधिकारी अर्जित की जाने वाली भूमि में हितबद्ध सभी व्यक्तियों से दावा आमंत्रित करते हुए दो स्थानीय समाचारपत्रों में, जिनमें से एक देशी भाषा में होगा, प्रकाशित सार्वजनिक सूचना देगा ।

(4) ऐसी सूचना में भूमि की विशिष्टियों का विवरण होगा और उस भूमि में हितबद्ध सभी व्यक्तियों से व्यक्तिगत रूप में या अभिकर्ता के माध्यम से अथवा धारा 3-ग की उपधारा (2) में निर्दिष्ट विधि व्यवसायी के माध्यम से सक्षम प्राधिकारी के समक्ष ऐसे समय और स्थान पर उपसंजात होने की और ऐसी भूमि में अपने-अपने हितों की प्रकृति का विवरण देने की अपेक्षा की जाएगी ।

(5) यदि उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन सक्षम

प्राधिकारी द्वारा अवधारित रकम किसी पक्षकार को स्वीकार नहीं है तो उक्त रकम किसी पक्षकार के आवेदन पर प्रांतीय सरकार द्वारा नियुक्त किए गए मध्यस्थ द्वारा अवधारित की जाएगी ।

(6) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के उपबंध इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक माध्यस्थम् को लागू होंगे ।

(7) सक्षम प्राधिकारी या माध्यस्थ, यथास्थिति, उपधारा (1) या उपधारा (5) के अधीन रकम का अवधारण करते समय निम्नलिखित को ध्यान में रखेगा –

(क) धारा 3-क के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख को भूमि का बाजार मूल्य ;

(ख) भूमि का कब्जा लेने के समय हितबद्ध व्यक्ति को ऐसी भूमि को अन्य भूमि से पृथक करने के कारण हुआ नुकसान, यदि कोई हो ;

(ग) भूमि का कब्जा लेते समय हितबद्ध व्यक्ति को उसकी अन्य स्थावर संपत्ति को किसी रीति से या उसके उपार्जनों पर हानिकार रूप से प्रभाव डालने वाले अर्जन के कारण हुआ नुकसान, यदि कोई है ;

(घ) यदि भूमि के अर्जन के परिणामस्वरूप हितबद्ध व्यक्ति अपना निवास या कारगार के स्थान को बदलने के लिए विवश है तो ऐसे परिवर्तन से अनुषांगिक उचित व्यय यदि कोई है ।"

15. 1956 की अधिनियम की धारा 3-घ और 3-छ को सामान्य ढंग से पढ़े जाने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों ही धाराओं अर्थात् धारा 3-घ और 3-छ में सूचना के प्रकाशन के प्रयोजन पूर्णतया भिन्न हैं । धारा 3-घ के अधीन भूमि के अर्जन की घोषणा की जाती है और शासकीय राजपत्र में अधिसूचना जारी किए जाने के पश्चात् भूमि समस्त भारों से मुक्त होकर पूर्णत: केंद्र सरकार में निहित हो जाती है । भूमि के अर्जन

के पश्चात् अगली कार्रवाई प्रतिकर के निर्धारण की होती है । धारा 3-छ(3) के अधीन पुन: यह अपेक्षित है कि सक्षम प्राधिकारी प्रतिकर के निर्धारण के लिए अग्रसर होने के पूर्व दो स्थानीय समाचारपत्रों, जिनमें से एक वर्णाकुलर भाषा का समाचारपत्र होगा, में सार्वजनिक सूचना अर्जित की जानी वाली भूमि में हितबद्ध समस्त व्यक्तियों से दावे आमंत्रित करते हुए जारी करेगा । धारा 3-छ की उपधारा (4) के अधीन यह उपबंधित है कि इस सूचना में भूमि के समस्त विवरण उपलब्ध कराए जाएंगे और भू-स्वामियों को अवसर प्रदान किया जाएगा कि वे प्रतिकर के निर्धारण के पूर्व व्यक्तिगत रूप से या अपने अभिकर्ता या विधि व्यवसायी के माध्यम से सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित हों ।

16. प्रथम प्रत्यर्थी ने अपने खंडन शपथपत्र में उक्त कथन से इनकार किया है और एक टालमटोल वाला उत्तर दिया है । खंडन शपथपत्र के पैरा 11 में यह अभिकथित किया गया है कि धारा 3-घ(2) के अधीन शासकीय राजपत्र में अधिसूचना तारीख 2 अप्रैल, 2018 को जारी की गई थी और तत्पश्चात् धारा 3-छ(3) के अधीन प्रतिकर के निर्धारण के पूर्व दो समाचारपत्रों 'अमर उजाला' और 'इंडियन एक्सप्रेस' में तारीख 29 अक्तूबर, 2018 को सूचना प्रकाशित कर दी गई है, जिसको खंडन शपथपत्र के संलग्नक सीए-1 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया गया है । खंडन शपथपत्र का पैरा 11 इस प्रकार है :-

> "11. रिट याचिका के पैरा 10 की अंतर्वस्तु स्वीकार नहीं है । आगे यह अभिकथित किया जाता है कि ग्राम बबुरा भैरो दयाल की अर्जित भूमि की अधिसूचना संख्या 1316, जिसे तारीख 2 अप्रैल, 2018 को शासकीय राजपत्र में राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम की धारा 3-घ के अधीन प्रकाशित किया गया है और तत्पश्चात् धारा 3-छ(3) के अधीन प्रतिकर के निर्धारण के पूर्व दो समाचारपत्रों 'अमर उजाला' और 'इंडियन एक्सप्रेस' में तारीख 29 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित किया गया है । तारीख 29 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित शासकीय राजपत्र अधिसूचना की सत्य प्रति को इस माननीय न्यायालय के परिशीलन के लिए इस शपथपत्र के संलग्नक सीए-1 के रूप में फाइल किया जा रहा है ।"

17. खंडन शपथपत्र के पैरा 11 के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि याचियों द्वारा उठाए गए विवाद्यक के संबंध में कि धारा 3-छ(3) के अधीन कोई सूचना प्रकाशित नहीं की गई, कोई विनिर्दिष्ट उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया ।

18. तत्पश्चात्, प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा एक अनुपूरक खंडन शपथपत्र फाइल किया गया, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि धारा 3-छ(3) के अधीन जारी की गई सूचना में त्रुटि के कारण धारा 3-छ के स्थान में धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया । अनुपूरक खंडन शपथपत्र के पैरा 3 और 4 को नीचे प्रत्युत्पादित किया गया है :–

> "3. 1956 के राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम की धारा 3-घ(1) के अधीन तारीख 2 अप्रैल, 2018 को शासकीय राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित की गई है और तत्पश्चात् अधिनियम की धारा 3-छ(3) के उपबंध के अधीन अधिसूचना दो समाचारपत्रों 'अमर उजाला' और 'इंडियन एक्सप्रेस' में तारीख 29 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित कर दी गई है, किंतु प्रकाशन में त्रुटि के कारण समाचारपत्र में अधिनियम की धारा 3-छ(3) के बजाय 3-घ(1) दर्शित कर दिया गया है ।
>
> 4. मुख्य खंडन शपथपत्र (जो तारीख 24 फरवरी, 2019 को शपथपूर्वक सत्यापित किया गया) के पैरा 11 में 1956 के राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम की धारा 3-छ(3) के सही उपबंध का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार दो स्थानीय समाचारपत्रों में प्रकाशन किया गया है । तथापि, तारीख 29 अप्रैल, 2018 की अधिसूचना में धारा 3-छ(3) के सही उपबंध का उल्लेख किए जाने के बजाय धारा 3-घ(1) के उपबंध का उल्लेख कर दिया गया है । तद्नुसार, अभिलेख पर लिए गए इस अनुपूरक खंडन शपथपत्र को मुख्य खंडन शपथपत्र के पैरा 11 का भाग प्रतीत किया जाए ।"

19. खंडन शपथपत्र के पैरा 11 के परिशीलन से यह स्पष्ट है कि इस बाबत असत्य कथन किया गया है कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना प्रकाशित की गई थी । प्रत्यर्थियों ने

उक्त कथन के समर्थन में शासकीय राजपत्र में संप्रकाशित अधिसूचना को खंडन शपथपत्र के संलग्नक सीए-1 के रूप में अभिलेख पर प्रस्तुत किया है । शासकीय राजपत्र में संप्रकाशित उक्त अधिसूचना के परिशीलन से दर्शित होता है कि यह धारा 3-घ के अधीन जारी की गई सूचना थी, न कि धारा 3-छ के अधीन जारी की गई सूचना, जैसाकि खंडन शपथपत्र के पैरा 11 में भी उल्लेख किया गया है । तत्पश्चात् एक अनुपूरक खंडन शपथपत्र भी यह स्पष्टीकरण देते हुए फाइल किया गया है कि शासकीय राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना में इस धारा को त्रुटि के कारण धारा 3-घ दर्शित कर दिया गया है । वास्तव में यह धारा 3-छ(3) होनी चाहिए । हमारा विचार है कि उक्त स्पष्टीकरण स्वीकार नहीं किया जा सकता । हम पूर्वोक्त अभिवचनों के परिशीलन से यह मताभिव्यक्ति करने के लिए आनत हैं कि भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के अधिकारियों ने इस विवाद्यक से बचने का प्रयास किया और उनकी तरफ से किया गया यह कार्य उचित कार्य नहीं था कि वे अपने खंडन शपथपत्र में बचने वाला और स्पष्ट उत्तर देते । भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण एक कानूनी प्राधिकरण है और उससे यह प्रत्याक्षा नहीं की जा सकती कि बेशक सामान्य मुकदमेबाज की भांति बर्ताव करें । उनका यह कर्तव्य था कि वे इस न्यायालय के समक्ष निष्पक्षतापूर्वक सत्य तथ्यों को प्रस्तुत करते । अनुपूरक खंडन शपथपत्र में यह स्वीकर किया गया है कि त्रुटि के कारण धारा 3-छ(3) के बजाय धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया है ।

20. 1997 के अधिनियम संख्या 16 द्वारा लाए गए संशोधन की योजना, जिसके द्वारा धारा 3-क से 3-छ को 1956 के अधिनियम में अंत:स्थापित किया गया है, से स्पष्टत: दर्शित होता है कि इस अधिसूचना को तीन प्रक्रमों में प्रकाशित किया जाना होता है : प्रथमत: धारा 3-क(2) के अधीन भूमि के अर्जन के आशय की घोषणा किया जाना और आक्षेप आमंत्रित किया जाना : द्वितीयत:, धारा 3-ध(2) के अधीन इस बाबत घोषणा के लिए कि भूमि का अर्जन किया जाना चाहिए और इस घोषणा के किए जाने के पश्चात् भूमि पूर्णतया केंद्र में निहित हो जाती है ; और तृतीयत:, धारा 3-झ(3) के अधीन भूमि में

हितबद्ध समस्त व्यक्तियों से दावे आमंत्रित करते हुए सार्वजनिक सूचना दो स्थानीय समाचारपत्रों में प्रकाशित किया जाना अपेक्षित होता है ।

21. इस बात को स्वीकार किया गया है कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-क और 3-घ के अधीन केवल दो सूचनाएं प्रकाशित की गई हैं । प्राधिकारियों द्वारा खंडन शपथपत्र के साथ कोई अन्य सूचना अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं की गई है ।

22. जहां तक इस प्रकथन का प्रश्न है कि शासकीय राजपत्र में अधिसूचना प्रकाशित किए जाने में भूलवश धारा 3-छ के बजाय धारा 3-घ प्रकाशित कर दी गई, को स्वीकार नहीं किया जा सकता । यदि तारीख 29 अप्रैल, 2018 को प्रकाशित दोनों समाचारपत्रों में कोई त्रुटि थी, तो प्रत्यर्थियों को शुद्धि पत्र जारी करना चाहिए था । इस गलती को शुद्ध करने के लिए ऐसी कोई कार्रवाई नहीं की गई ।

23. इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने **शारदा यादव** (उपरोक्त) वाले मामले में इसी तथ्यों पर विचार किया । उस मामलों में भी धारा 3-घ के अधीन सूचना प्रकाशित नहीं की गई थी । न्यायालय ने जो अभिनिर्धारित किया वह निम्नलिखित है :-

> "हम दलीलों पर विचारोपरांत इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिनियम की धारा 3(छ) के अधीन प्रतिकर के अधिनिर्णय के प्रयोजनार्थ दो समाचारपत्रों में सूचना प्रकाशित किए जाने की बाध्यता है । याची ने सुस्पष्ट रूप से रिट याचिका के पैरा 20 में अधिकथित किया है कि ऐसी कोई भी सूचना प्रकाशित नहीं की गई और न ही याचियों को आक्षेप फाइल किए जाने के लिए कोई अवसर प्रदान किया गया ।
>
> श्री मल्होत्रा ने निवेदन किया कि तारीख 3 नवंबर, 2011 की अधिसूचना पर अधिनियम की धारा 3-छ के अधीन समाचारपत्र में प्रकाशित अधिसूचना के रूप में विचार किया जाना चाहिए ।
>
> हमको आशंका है कि उक्त अधिसूचना धारा 3-घ के अधीन अधिसूचना हो सकती है और यह अधिनियम की धारा 3-छ के अधीन अधिसूचना नहीं हो सकती । इसलिए, खंडन शपथपत्र के

पैरा 28 में समाविष्ट प्रकथन भ्रामक है । इसलिए प्रत्यर्थियों ने अधिनियम में ही विरचित नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों को समाविष्ट करने वाले कानूनी उपबंध का अनुपालन नहीं किया है । यह स्थिरीकृत विधि है कि यदि किसी कार्य का समाचारपत्र में सूचना के प्रकाशन के पश्चात् संपादित किया जाना अपेक्षित होता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि यह मात्र एक औपचारिता है और किसी भूधृतिधारक के सारभूत अधिकार पर विचार करते हुए प्रतिकर के अधिनिर्णय से संबंधित मामला उक्त उपबंध का अनुपालन किए बिना अधिनिर्णय पारित किए जाने के द्वारा विफल नहीं किया जा सकता । यदि एक बार यह अभिनिर्धारित कर दिया जाता है कि अधिनिर्णय नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के अतिक्रमण में है, तो इस न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह 1986 के अधिनियम के अधीन अनुतोष प्राप्त करने के लिए याची को निर्देशित करे । हमको अधिनिर्णय धारा 3-छ के उपबंधों के विपरीत होने और इस उपबंध के अतिलंघन में होने के कारण यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि प्राधिकारी का उक्त कार्य कानूनी उपबंधों के पूर्ण रूप से असम्मान में था, जिसके परिणामस्वरूप नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का अतिक्रमण हुआ । इसलिए, इस मामले के तथ्यों के आधार पर याची के लिए किसी अनुकल्पिक अनुतोष के उपलब्ध होने का प्रश्न नहीं उठता और हम इस संबंध में हमारे विचार **व्हिर्लपूल कारपोरेशन** बनाम **व्यापार चिह्न रजिस्ट्रार, मुंबई और अन्य** [(1998) 8 एस. सी. सी. पेज 1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिकथित विधि द्वारा समर्थन प्राप्त हैं ।

अधिनिर्णय, याची की कृषि भूमि के संबंध में पारित किया गया, स्पष्टतः अधिनियम की धारा 3-छ के अतिक्रमण में है । चूंकि अधिनिर्णय में यह उल्लेख कहीं पर भी नहीं किया गया है कि समाचारपत्र में ऐसी कोई सूचना प्रकाशित की गई थी, जैसाकि उक्त उपबंध में अपेक्षित है । परिणामस्वरूप, तारीख 30 अप्रैल, 2013 का आक्षेपित अधिनिर्णय उक्त सीमा तक अभिखंडित किया जाता है ।"

24. हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस मामले के तथ्य **शारदा यादव** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की खण्ड न्यायपीठ द्वारा अभिकथित विधि द्वारा पूर्णतः आच्छादित हैं । इसी प्रकार की दलीलें उस मामले में भी दी गई थीं कि धारा 3-घ के अधीन सूचना को धारा 3-छ के अधीन सूचना मान लिया जाए । वर्तमान मामले में प्रत्यर्थियों का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि धारा 3-छ(3) के अधीन सूचना में भूलवश धारा 3-घ का उल्लेख कर दिया गया, किंतु कोई शुद्धिपत्र जारी नहीं किया गया । इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थियों ने अनुपूरक खंडन शपथपत्र फाइल करने के बजाय तारीख 29 अप्रैल, 2018 की सूचना को अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं किया है ।

25. हम ऊपर उल्लिखित समस्त कारणों को ध्यान में रखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ के अधीन द्वितीय प्रत्यर्थी द्वारा पारित तारीख 29 सितंबर, 2018 का अधिनिर्णय 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन किए बिना पारित किया गया है, इसलिए इस अधिनिर्णय को उस सीमा तक अभिखंडित किया जाता है । हम याचियों को 1956 के अधिनियम की धारा 3-छ(3) के निबंधनों के अनुसार सक्षम प्राधिकारी के समक्ष उनके इस दावे के संबंध में कि उनकी भूमि गैर कृषि भूमि है जिस पर निर्माण विद्यमान है, आक्षेप फाइल करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हैं । सक्षम अधिकारी उनके आक्षेपों पर विचार करेगा और याचियों को अवसर प्रदान करने के पश्चात् विधि अनुसार अधिनिर्णय पारित करेगा । यह कार्रवाई अविलंब की जाए, अधिमानतः इस आदेश की सनसूचना की तारीख से चार माह की अवधि के भीतर ।

26. तद्नुसार, रिट याचिका मंजूर की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

अपील मंजूर की गई ।

शु.

सीमा चौहान (श्रीमती)

बनाम

राघवेन्द्र सिंह राघव और अन्य

(2019 की अपीली रिट सं. 7452)

तारीख 23 अक्तूबर, 2019

न्यायमूर्ति जे. जे. मुनीर

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 (1890 का 8) – धारा 7, 8 और 10 [हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 6 और सामान्य नियम (सिविल) का नियम 657] – संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति – अवयस्क का संरक्षक नियुक्त किए जाने हेतु आवेदन – आवेदक द्वारा आज्ञापक प्रक्रिया का पालन सुनिश्चित न किया जाना और संरक्षक की हैसियत से कार्य करने की इच्छा के बाबत घोषणा संलग्न न किया जाना – आवेदन धारा 7 के अधीन प्रस्तुत किया जाना चाहिए था और प्रस्तुत किए जाने के पूर्व धारा 8 और 10 में विहित प्रक्रिया का पालन किया जाना आवश्यक था – आवेदक धारा 8 और 10 के अधीन प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था ।

हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (1956 का 32) – धारा 6क और 19ख – संरक्षक के रूप में नैसर्गिक माता और पिता के मध्य लिंग के आधार पर पक्षपात – वर्तमान में परिवर्तित होते समय, विधि और संवैधानिक मूल्यों की परिवर्तनशील दृष्टि में लिंग के आधार पर पक्षपात को समाप्त किया गया है और तद्नुसार माता और पिता को अवयस्क की संरक्षकता के बाबत समान हैसियत प्रदान की गई है ।

हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 – धारा 25 और धारा 7 [सपठित सामान्य नियम (सिविल), 1957 की धारा 657] – माता और पिता में से कोई एक संरक्षक उस संरक्षक से प्रजातिगत रूप से भिन्न होगा जिसको अधिनियम की धारा 7(2) के अधीन न्यायालय द्वारा वसीयत या अन्य लिखत के आधार पर नियुक्त किया जाता है – नैसर्गिक न्याय संरक्षक साधारणत: अध्याय 2 की योजना के अनुसार

उपयुक्त नहीं होते या उन व्यक्तियों की कोटि के अंतर्गत नहीं आते, जिन्हें अधिनियम की धारा 7 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का अवलंब लेते हुए संरक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता है ।

संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 – धारा 25 – अवयस्क की अभिरक्षा का संरक्षक का हक – यदि न्यायालय का यह विचार होता है कि अवयस्क के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि उसको संरक्षक की अभिरक्षा में रखा जाए, तो न्यायालय उचित आदेश पारित कर सकता है और आदेश के प्रवर्तन के लिए अवयस्क को गिरफ्तार भी करा सकता है और उसे संरक्षक की अभिरक्षा में सौंप सकता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 246 और 14 [सपठित हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(क) और 19(ख)] – कानून के उपबंध का अर्थान्वयन और निर्वचन समाज के कल्याण में किया जाना – यह सुस्थापित है कि यदि किसी कानून के आधार पर किया गया एक अर्थान्वयन कानून को असंवैधानिक कर देगा, जबकि अन्य अर्थान्वयन, जो कि संभव है, कानून को संवैधानिक सीमाओं के भीतर रखेगा, तो न्यायालय पश्चात्वर्ती कानून को पूर्विकता प्रदान करेगा और यह उपधारणा करेगा कि विधानमंडल द्वारा अधिनियमित कानून संवैधानिक परिसीमाओं के अंतर्गत है ।

संक्षेप में मामले के तथ्य यह हैं कि याची और प्रत्यर्थी संख्या 1 विवाहित युगल हैं, जो एक दूसरे से पृथक् होकर रह रहे हैं । उनकी एक अवयस्क पुत्री भी है । प्रत्यर्थी संख्या 1 अर्थात् पिता ने संरक्षकता और प्रतिपाल्य अधिनियम, 1890 की धारा 8 और 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसके द्वारा उसने स्वयं को अपनी अवयस्क पुत्री का संरक्षक नियुक्त किए जाने की ईप्सा की और साथ ही एक अन्य अनुतोष की भी ईप्सा की कि उसकी अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा उसके हवाले कर दी जाए । अधिनियम की धारा 8 और 10 के अधीन फाइल किया गया उक्त आवेदन अलीगढ़ के प्रधान न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया, जहां इस आवेदन को 2017 के प्रकीर्ण वाद संख्या 10 के रूप में संख्यांकित किया गया । इस आवेदन में की गई

संक्षिप्त प्रार्थना यह है, "यह प्रार्थना की जाती है कि न्यायहित में अपीलार्थी को उक्त अवयस्क का संरक्षक नियुक्त कर दिया जाए और अवयस्क की अभिरक्षा उसके हवाले कर दी जाए और विपक्षी को निर्देशित किया जाए कि वह अवयस्क की अभिरक्षा अवयस्क के नैसर्गिक पिता और संरक्षक अर्थात् आवेदक को माननीय न्यायालय द्वारा विहित समयावधि के भीतर हस्तगत कर दे, जिसमें विफल रहने पर आवेदक को अवयस्क की अभिरक्षा विधि की प्रक्रिया के माध्यम से दिलाई जाए ।" याची-पत्नी की तरफ से इस आवेदन के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए गए जिसके द्वारा आवेदन में किए गए अभिकथनों से इनकार किया गया । आवेदन के गुणागुणों पर आक्षेप फाइल किए जाने के अतिरिक्त उसकी पोषणीयता, जिस स्वरूप और तरीके में आवेदन फाइल किया गया, के बाबत भी आक्षेप फाइल किए गए । यह आक्षेप इस बाबत फाइल किए गए कि तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 10(1) और 10(3) के अधीन अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया । चूंकि याची-पत्नी के अनुसार धारा 10(1) और 10(3) के अधीन यह आज्ञापक है कि धारा 10 के अधीन आवेदन के साथ प्रस्तावित संरक्षक द्वारा संरक्षक की हैसियत से कार्य करने की इच्छा के बाबत घोषणा भी संलग्न होनी चाहिए, जिस पर प्रस्तावित संरक्षक के हस्ताक्षर होने चाहिए और जिसको दो साक्षियों द्वारा उनके हस्ताक्षरों के अंतर्गत प्रमाणित किया जाना चाहिए । याची-पत्नी की ओर से यह दलील दी गई कि संरक्षक की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन उचित रीति में प्रारुपित नहीं किया गया और यह आवेदन अधिनियम की धारा 10(1) और 10(3) द्वारा अधिकथित आज्ञापक विधि के विरुद्ध था और इसका एक कारण यह भी है कि यह आवेदन विहित प्रोफार्मा में प्रस्तुत नहीं किया गया था और साथ ही यह तथ्य भी कि इसके साथ अपेक्षित घोषणा संलग्न नहीं थी । प्रथम प्रत्यर्थी ने आक्षेपों के विरुद्ध तारीख 18 दिसंबर, 2018 का एक आवेदन फाइल किया जिसके द्वारा उसने अधिनियम की धारा 10(3) के अधीन घोषणा प्रस्तुत करने के लिए न्यायालय की अनुज्ञा की ईप्सा की । उसने इस आवेदन द्वारा यह प्रार्थना की कि उसकी घोषणा को अभिलेख पर मंजूर कर लिया जाए । इस प्रयोजनार्थ

फाइल किए गए शपथ-पत्र, जिसको प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था और दो साक्षियों द्वारा प्रमाणित किया गया था, भी फाइल किया गया । तारीख 18 दिसंबर, 2018 का आवेदन उस अनियमितता को सुधारे जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया था, जिसे प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अभिकथित रूप से कारित किया गया था और जिसको याची-पत्नी द्वारा फाइल किए गए अपने आक्षेपों के माध्यम से न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए तारीख 18 दिसंबर, 2018 के इस आवेदन के विरुद्ध याची-पत्नी की तरफ से तारीख 3 मई, 2019 को आक्षेप फाइल किए गए, जिसके द्वारा धारा 10 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के परिपत्र के बाबत और अधिक तीखे आक्षेप किए गए, जो आक्षेप के ज्ञापन के पैरा 4 में समाविष्ट हैं । याची-पत्नी ने इन आक्षेपों द्वारा यह दावा किया कि अधिनियम की धारा 10 के अधीन आवेदन/याचिका के रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् अधिनियम की धारा 10(3) और 1957 के सामान्य नियम (सिविल) के नियम 657 के अधीन न्यायालय के समक्ष घोषणा फाइल किए जाने का कोई उपबंध नहीं है, प्रत्यर्थी पत्नी की ओर से यह दलील दी गई कि विहित प्रपत्र के आधार पर कोई सामान्य घोषणा अभिलेख पर मंजूर नहीं की जा सकती । उसने यह प्रकथन भी किया कि तारीख 18 दिसंबर, 2018 की घोषणा मात्र एक शपथ-पत्र है, जिस पर प्रत्यर्थी राघवेन्द्र सिंह राघव, जिनकी पहचान उनके काउंसेल द्वारा की गई, के हस्ताक्षर उपलब्ध हैं । यह घोषणा अधिनियम की धारा 10(3) के अधीन और सामान्य नियम (सिविल) के नियम 657, जिसके अधीन विहित प्रपत्र संख्या जी. डब्ल्यू.-2 अधिनियम की धारा 10(3) सपठित नियम 657 के अधीन अपेक्षित घोषणा किए जाने के संबंध में संक्षेप में प्रयोग की जाने वाली भाषा को उपबंधित करता है, के अनुसार की गई घोषणा नहीं है । प्रपत्र संख्या जी. डब्ल्यू.-2 में उल्लिखित घोषणा को तारीख 3 मई, 2019 के आक्षेप के पैरा 4 में उद्धृत किया गया है । विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने तारीख 4 जुलाई, 2019 को पारित अपने आदेश द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के तारीख 18 दिसंबर, 2018 के आवेदन को मंजूर करने के लिए अग्रसर हो गए और उन्होंने उसके द्वारा की गई

घोषणा को उस प्रपत्र और तरीके में अभिलेख पर मंजूर कर लिया, जिसमें दो साक्षियों द्वारा सत्यापित घोषणा को शपथ-पत्र के रूप में फाइल किया गया और जिसके द्वारा याची-पत्नी के आक्षेपों से इनकार किया गया । इस आवेदन को 200/- रुपए की राशि के लागत के संदाय पर मंजूर कर लिया गया । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा इससे व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह याचिका फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य का एक यह सूत्र कि नैसर्गिक अभिरक्षक, जैसेकि माता-पिता दोनों में कोई एक संरक्षक, उस संरक्षक से प्रजातिगत रूप से भिन्न होता है, जिसको अधिनियम की धारा 7 के अधीन नियुक्त किया है या उसकी नियुक्ति की घोषणा की जाती है, जिसके आधार पर वह वस्तुतः कार्य करता है, अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) में विद्यमान है । धारा 7 की उपधारा (2), जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, से यह दर्शित होता है कि धारा 7 के अधीन पारित किया गया आदेश किसी अभिरक्षक, जिसको न्यायालय द्वारा वसीयत या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त किया गया है या उसकी नियुक्ति की न्यायालय द्वारा उसको नियुक्त किया गया है या नियुक्ति की घोषणा की गई है, को संरक्षकता से हटाए जाने के प्रयोजनार्थ क्रियान्वित होती है । उक्त उपबंध इस बात को स्पष्ट करता है कि नैसर्गिक संरक्षक साधारणतः अध्याय 2 की योजना के अनुसार उपयुक्त नहीं होते या वे उन व्यक्तियों के कोटि के अंतर्गत आते हैं, जो अधिनियम की धारा 7 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का अवलंब लेते हुए संरक्षक के रूप में नियुक्ति या घोषणा की ईप्सा करते हैं । यह बिल्कुल ही अन्य मामला है कि यदि कोई व्यक्ति, जो नैसर्गिक संरक्षक नहीं है, किसी अवयस्क के शरीर या उसकी संपत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त किया जाता है या इस बाबत कोई घोषणा की जाती है, तो संरक्षक, जिसको वसीयत या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त नहीं किया गया है या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, अपनी हैसियत से हट जाएगा । आगे, अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (3) इस विभेद को इस आज्ञा के द्वारा स्पष्ट करती है कि यदि प्रतिपाल्य को वसीयत या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय

द्‌वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक की देखभाल में दिया जाता है और उसके शरीर या संपत्ति या दोनों के लिए अन्य संरक्षक नियुक्त किया जाता है या धारा 7 के अधीन पारित किए गए आदेश द्‌वारा इस बाबत कोई घोषणा की जाती है, तो उसको इस प्रकार से नियुक्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि पूर्ववर्ती आदेश द्‌वारा न्यायालय द्‌वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक की शक्तियां अधिनियम के उपबंधों के अनुसार समाप्त नहीं हो जाती । किसी अवयस्क, जो अपने नैसर्गिक संरक्षक की संरक्षकता के अधीन है, के शरीर या संपत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त किए जाने के मामले में ऐसा कोई निषेध नहीं है । अधिनियम की धारा 7, विशेष रूप से अध्याय 2 के अधीन परिकल्पित यह योजना नैसर्गिक संरक्षकों और उनके अलावा अन्य व्यक्तियों के मध्य स्पष्टत: विभाजन करती है । अत:, संरक्षक के रूप में नियुक्ति या घोषणा की ईप्सा करने की शक्ति सामान्यतया अपने प्रतिपाल्य की अभिरक्षा की ईप्सा किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी नैसर्गिक संरक्षक को उपलब्ध अनुतोष से भिन्न होती है । इस मामले में याचिका के परिशीलन से सारत: पक्षों के मध्य संबंध अवयस्क की अभिरक्षा के संबंध में, न कि अधिनियम की धारा 7 के अधीन संरक्षक की नियुक्ति के संबंध में दर्शित होते हैं । यह याचिका अधिनियम की धारा 25 में स्पष्टत: निर्दिष्ट किए जाने योग्य है और न कि धारा 7 में । अधिनियम की धारा 8 और 10, जिनके अधीन इस याचिका को फाइल किया गया है, को सारभूत उपबंधों के रूप में निर्दिष्ट किया जाना पूर्णत: भ्रमपूर्ण है । यह स्थिति होने के कारण अंतर्वलित पक्षों के अधिकार और वह अनुतोष, जिसका उन्होंने सारत: अवलंब लिया है, अधिनियम की धारा 25 के अधीन है और न कि धारा 7 के अधीन, इसलिए, अधिनियम की धारा 10(3) सपठित 1957 के सामान्य नियम (सिविल) की धारा 657 पर आधारित पोषणीयता के बाबत आक्षेप, जो सभी अधिनियम की धारा 7 के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियों में निर्दिष्ट किए जाने योग्य हैं, पूर्णत: भ्रमपूर्ण हैं । इसलिए, यह न्यायालय उन कारणों, जिनका अवलंब निचले न्यायालय द्‌वारा लिया गया, से पूर्णत: भिन्न कारणोंवश विद्‌वान् कुटुंब न्यायालय द्‌वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होता है । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1999] (1999) 2 एस. सी. सी. 228 :
गीता हरिहरण (सुश्री) और एक अन्य बनाम
भारतीय रिजर्व बैंक और एक अन्य ; 8

[1977] आई. एल. आर., 1977 एम. पी. 239 :
कलीमुन्निसा बनाम **शाह सलीम खान रहमान**
खान । 10

अपीली (सिविल रिट) अधिकारिता : 2019 की अपीली रिट याचिका सं. 7452.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन रिट अपील ।

याची की ओर से श्री आर. पी. एस. चौहान

प्रत्यर्थी की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल और श्री सौरभ सिंह

निर्णय

यह रिट याचिका अलीगढ़ के अपर प्रधान न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, कक्ष संख्या 3 द्वारा तारीख 14 जुलाई, 2019 को पारित आदेश को चुनौती देते हुए फाइल की गई है, जिसके द्वारा 2017 के प्रकीर्ण वाद संख्या 10 में 1899 के संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 10(3) के अधीन फाइल किए गए आवेदन, जिसके द्वारा अधिनियम की धारा 10(3) के अधीन घोषणा को अभिलेख पर प्रस्तुत करते हुए इस प्रार्थना को मंजूर किए जाने की ईप्सा की गई थी कि इस घोषणा को अभिलेख पर मंजूर कर लिया जाए, ईप्सा करते हुए यह प्रार्थना की गई को अस्वीकृत कर दिया गया था ।

2. यह आदेश उन तथ्यों की पृष्ठभूमि में पारित किया गया है, जो यह है कि याची **सीमा चौहान** और प्रत्यर्थी संख्या 1 **राघवेन्द्र सिंह राघव** ऐसे विवाहित युगल हैं, जो एक दूसरे से पृथक् होकर रह रहे हैं । उनकी

एक अवयस्क पुत्री भी है जिसका नाम बेबी गर्विता राघव है । पुत्री के पिता ने अधिनियम की धारा 8 और 10 के अधीन एक आवेदन फाइल किया जिसके द्वारा उसने स्वयं को अपनी अवयस्क पुत्री का संरक्षक नियुक्त किए जाने की ईप्सा की और साथ ही एक अन्य अनुतोष की भी ईप्सा की कि उसकी अवयस्क पुत्री की अभिरक्षा उसके हवाले कर दी जाए । अधिनियम की धारा 8 और 10 के अधीन उक्त आवेदन अलीगढ़ के प्रधान कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था, जहां इस आवेदन को 2017 के प्रकीर्ण वाद संख्या 10 के रूप में संख्यांकित किया गया । इस आवेदन में की गई संक्षिप्त प्रार्थना निम्नलिखित है :–

> "अत: यह प्रार्थना की जाती है कि न्यायहित में अपीलार्थी को उक्त अवयस्क का संरक्षक नियुक्त कर दिया जाए और अवयस्क की अभिरक्षा उसके हवाले कर दी जाए और विपक्षी को निर्देशित किया जाए कि वह अवयस्क की अभिरक्षा उसके नैसर्गिक पिता और संरक्षक अर्थात् आवेदक को माननीय न्यायालय द्वारा विहित समयावधि के भीतर हस्तगत कर दे जिसमें विफल रहने पर आवेदक को अवयस्क की अभिरक्षा विधि की प्रक्रिया के माध्यम से दिलाई जाए ।

अनुसूची

चल और अचल संपत्तियां

अवयस्क के नाम में कोई चल या अचल संपत्ति नहीं है ।

हस्ताक्षर अपठनीय

आवेदक"

3. याची-पत्नी की तरफ से इस आवेदन के विरुद्ध आक्षेप तारीख 30 नवंबर, 2018 को फाइल किए गए जिसके द्वारा आवेदन में किए गए अभिकथनों से इनकार किया गया । आवेदन के गुणागुणों पर आक्षेप फाइल किए जाने के अतिरिक्त उसकी पोषणीयता, जिस स्वरूप और तरीके में यह आवेदन फाइल किया गया, के बाबत भी आक्षेप फाइल किए गए । यह आक्षेप इस बाबत फाइल किए गए कि तृतीय प्रत्यर्थी

द्वारा अधिनियम की धारा 10(1) और 10(3) के अधीन अधिकथित आज्ञापक प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया । ऐसा इसलिए किया गया, चूंकि याची-पत्नी के अनुसार धारा 10(1) और 10(3) के अधीन जो आज्ञा है, वह यह है कि धारा 10 के अधीन आवेदन के साथ प्रस्तावित संरक्षक द्वारा संरक्षक की हैसियत से कार्य करने की इच्छा के बाबत घोषणा भी संलग्न होनी चाहिए, जिस पर प्रस्तावित संरक्षक द्वारा हस्ताक्षर होने चाहिए और जिसको दो साक्षियों द्वारा उनके हस्ताक्षरों के अंतर्गत प्रमाणित किया जाना चाहिए । याची-पत्नी की ओर से यह दलील दी गई कि संरक्षक की नियुक्ति के लिए प्रस्तुत किया गया आवेदन उचित रीति में विरचित नहीं किया गया है और यह आवेदन अधिनियम की धारा 10(1) और 10(3) द्वारा अधिकथित आज्ञापक विधि के विरुद्ध है और इसका एक कारण यह भी है कि यह आवेदन विहित प्रोफार्मा में प्रस्तुत नहीं किया गया और साथ ही यह तथ्य भी कि इसके साथ अपेक्षित घोषणा संलग्न नहीं है । पूर्वोक्त प्रथम प्रत्यर्थी ने आक्षेपों के विरुद्ध तारीख 18 दिसंबर, 2018 का एक आवेदन फाइल किया, जिसके द्वारा उसने अधिनियम की धारा 10(3) के अधीन घोषणा प्रस्तुत किए जाने के लिए न्यायालय की अनुज्ञा की ईप्सा की । उसने इस आवेदन में यह प्रार्थना की कि उसकी घोषणा को अभिलेख पर मंजूर कर लिया जाए । इस प्रयोजनार्थ फाइल किए गए शपथ-पत्र, जिसको प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा हस्ताक्षरित किया गया था और दो साक्षियों द्वारा प्रमाणित किया गया था, भी उक्त आवेदन के साथ फाइल किया गया । तारीख 18 दिसंबर, 2018 का आवेदन उस अनियमितता को सुधारे जाने के प्रयोजनार्थ फाइल किया गया था, जिसे तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा अभिकथित रूप से पारित किया गया था और जिसको याची-पत्नी द्वारा फाइल किए गए आक्षेपों के माध्यम से न्यायालय के संज्ञान में लाया गया था । प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए तारीख 18 दिसंबर, 2018 के इस आवेदन के विरुद्ध याची-पत्नी की तरफ से तारीख 3 मई, 2019 को आक्षेप फाइल किए गए, जिसके द्वारा धारा 10 के अधीन फाइल किए गए आवेदन के परिपत्र के बाबत और अधिक तीव्र आक्षेप किए गए, जो आक्षेप के ज्ञापन के पैरा 4 में समाविष्ट हैं । याची-पत्नी

ने इन आक्षेपों द्वारा यह दावा किया कि अधिनियम की धारा 10 के अधीन आवेदन/याचिका के रजिस्ट्रीकरण के पश्चात् अधिनियम की धारा 10(3) और 1957 के सामान्य नियम (सिविल) के नियम 657 के अधीन घोषणा फाइल किए जाने का कोई उपबंध नहीं है ।

4. प्रत्यर्थी पत्नी की ओर से यह दलील दी गई कि विहित प्रपत्र के आधार पर कोई सामान्य घोषणा अभिलेख पर मंजूर नहीं की जा सकती । उसने यह प्रकथन भी किया कि तारीख 18 दिसंबर, 2018 की घोषणा मात्र एक शपथ-पत्र है, जिस पर प्रत्यर्थी **राघवेन्द्र सिंह राघव,** जिनकी पहचान उनके काउंसेल द्वारा की गई, के हस्ताक्षर उपलब्ध हैं । यह घोषणा अधिनियम की धारा 10(3) के अधीन और सामान्य नियम (सिविल) के नियम 657, जिसके अधीन विहित प्रपत्र संख्या जी. डब्ल्यू.-2 अधिनियम की धारा 10(3) सपठित नियम 657 के अधीन अपेक्षित घोषणा किए जाने के संबंध में संक्षेप में प्रयोग की जाने वाली भाषा को उपबंधित करता है, के अनुसार की गई घोषणा नहीं है । प्रपत्र संख्या जी. डब्ल्यू.-2 में उल्लिखित घोषणा को तारीख 3 मई, 2019 के आक्षेप के पैरा 4 में उद्धृत किया गया है । विद्वान् न्यायाधीश, कुटुंब न्यायालय ने तारीख 4 जुलाई, 2019 को पारित अपने आदेश द्वारा तृतीय प्रत्यर्थी के तारीख 18 दिसंबर, 2018 के आवेदन को मंजूर करने के लिए अग्रसर हो गए और उन्होंने उसके द्वारा की गई घोषणा को उस प्रपत्र और तरीके में अभिलेख पर मंजूर कर लिया, जिसमें दो साक्षियों द्वारा सत्यापित घोषणा को शपथ-पत्र के रूप में फाइल किया गया और जिसके द्वारा याची-पत्नी के आक्षेपों से इनकार किया गया । इस आवेदन को 200/- रुपए की राशि के लागत के संदाय पर मंजूर कर लिया गया । प्रत्यर्थी-पत्नी द्वारा इससे व्यथित होकर संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन यह याचिका फाइल की गई है ।

5. प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 8 और 10 के अधीन फाइल किए गए आवेदन को पढ़े जाने पर यह न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि यद्यपि इस आवेदन को अधिनियम की धारा 8 और 10 के अधीन आवेदन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, फिर भी यह आवेदन सारत: संरक्षक की नियुक्ति के लिए फाइल किया गया आवेदन नहीं है ।

न्यायालय ने टिप्पणी की कि न तो धारा 8 और न ही धारा 10 किसी भी पक्ष को कोई अनुतोष प्रदान करते हैं या न्यायालय को संरक्षक नियुक्त करने की शक्ति प्रदान करते हैं । संरक्षक नियुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ न्यायालय को प्रदत्त शक्ति धारा 7 में अधिकथित हैं । धारा 7 निम्नलिखित है :–

" **7. संरक्षकता के बारे में न्यायालय की आदेश करने की शक्ति** – (1) जहां कि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अप्राप्तवय का इसमें कल्याण है कि –

(क) उसके शरीर या सम्पत्ति या दोनों के लिए संरक्षक की नियुक्ति करने वाला, अथवा

(ख) किसी व्यक्ति को ऐसा संरक्षक घोषित करने वाला, आदेश किया जाए, वहां न्यायालय तद्नुसार आदेश कर सकेगा ।

(2) इस धारा के अधीन दिए गए आदेश से यह विवक्षित होगा कि कोई भी संरक्षक, जो विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, हटा दिया गया है ।

(3) जहां कि कोई संरक्षक विल या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त या न्यायालय द्वारा नियुक्त या घोषित किया गया है, वहां उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त या घोषित करने का इस धारा के अधीन कोई आदेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक पूर्वोक्त नियुक्त या घोषित संरक्षक की शक्तियां इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन परिविरत न हो गई हों ।"

6. धारा 8 धारा 7 के अधीन प्रदत्त शक्तियों को निर्दिष्ट करती हैं और यह धारा उन व्यक्तियों को विहित करती हैं, जो उन शक्तियों का अवलंब लेने की अर्हता रखते हैं । इसी प्रकार धारा 10 संरक्षक की नियुक्ति के लिए आवेदन के प्रपत्र के बारे में अधिकथित करती है और यह धारा पुन: अधिनियम की धारा 7 के अधीन न्यायालय को उपलब्ध संरक्षक की नियुक्ति के अनुतोष और शक्ति के बाबत निर्दिष्ट करती है ।

अत:, धारा 8 या 10 के अधीन आवेदन या याचिका सदैव धारा 7 के अधीन याचिका होगी और न कि धारा 8 या 10 के अधीन, जो किसी अवयस्क या उसकी संपत्ति के संरक्षक के रूप में नियुक्ति की ईप्सा करने वाले किसी व्यक्ति के अधिकारों को प्रभावी किए जाने या इस बाबत घोषणा की ईप्सा किए जाने के बाबत कि वह इस प्रकार का संरक्षक है, परिकल्पित यांत्रिक उपबंध है । अत: अधिनियम की धारा 8 और 10 किसी व्यक्ति को संरक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने के प्रयोजनार्थ प्रत्येक परिस्थिति में न्यायालय की अधिकारिता के आधार हैं ; किसी भी स्थिति में कोई व्यक्ति, जो किसी अवयस्क या उसकी संपत्ति के संरक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने की ईप्सा करता है, अनुतोष प्राप्त करने की ईप्सा करते हुए इस उपबंध का आश्रय नहीं ले सकता ।

7. प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन से सारत: यह दर्शित होता है कि यह आवेदन अधिनियम की धारा 7 के अधीन प्रस्तुत किया गया है और न कि धारा 8 या 10 के अधीन । अधिनियम की धारा 7 अधिनियम के अध्याय 2 में विद्यमान है । अध्याय 2 संरक्षक की नियुक्ति और घोषणा के संबंध में विचार करता है । यह नियुक्ति और घोषणा ऐसी परिस्थिति में की जाती है, जहां न्यायालय इस बाबत संतुष्ट है कि जो कुछ भी किया जा रहा है वह अवयस्क के कल्याण के लिए और अवयस्क या उसकी संपत्ति के लिए संरक्षक नियुक्त किए जाने, या दोनों के लिए है, या इन बाध्यताओं का निर्वहन करने वाले व्यक्ति को वस्तुत: उसका संरक्षक घोषित कर दिया जाए ताकि उसकी शक्तियां और संगत अनुतोष प्रभावी किए जा सकें । अत:, संरक्षक की नियुक्ति के संबंध में अधिनियम के अध्याय 2 के अंतर्गत अधिकथित संपूर्ण योजना विधि की दृष्टि में इस प्रयोजनार्थ नहीं समझी जाएगी, जैसेकि नैसर्गिक संरक्षकों के बाबत समझी जाती है । पिता या माता नैसर्गिक संरक्षकों की कोटि के अंतर्गत आते हैं ।

8. इस न्यायालय को यहां पर यह टिप्पणी करनी चाहिए कि पूर्व में पिता को सदैव ही नैसर्गिक संरक्षक माना जाता था, माता को नहीं ; माता नैसर्गिक संरक्षक नहीं हो सकती थी, जब तक पिता जीवित था । वर्तमान में परिवर्तित होते समय और विधि और संवैधानिक मूल्यों की

परिवर्तनशील दृष्टि में लिंग के आधार पर पक्षपात को समाप्त किया जा रहा है, और तद्नुसार माता और पिता को समान हैसियत प्रदान की गई है । इस न्यायालय की दृष्टि में माता और पिता, दोनों नैसर्गिक संरक्षक होंगे । इस संदर्भ में माननीय उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा **गीता हरिहरण (सुश्री) और एक अन्य** बनाम **भारतीय रिजर्व बैंक और एक अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय को निर्दिष्ट किया गया है । इस मामले में 1956 के हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(क) और इसी अधिनियम की धारा 19(ख) की संवैधानिक विधिमान्यता को इस आधार पर चुनौती दी गई थी कि ये दोनों ही धाराएं पिता-माता के लिंग के आधार पर पक्षपातपूर्ण भेदभाव करते हैं, चूंकि माता को पिता के मुकाबले मात्र उसके लिंग के आधार पर निम्नतर स्थिति में रखा जाता है । यह 1956 के अधिनियम की धारा 6 के आधार पर किया जाता रहा है, जिसके अधीन किसी अवयस्क का नैसर्गिक संरक्षक प्रथमदृष्ट्या उसका पिता होता है और उसके पश्चात् माता । उपरोक्त चुनौती को ध्यान में रखते हुए **गीता हरिहरण (सुश्री)** (उपरोक्त) वाले मामले पर विचार करते हुए माता और पिता को एक ही स्थिति में रखे जाने के प्रयोजनार्थ कानून को पढ़ा गया । **गीता हरिहरण (सुश्री)** (उपरोक्त) वाले मामले में जो अभिनिर्धारित किया गया, वह निम्नलिखित है :-

> "5. क्योंकि दोनों ही मामलों में हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(क) और संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 9(ख) की संवैधानिकता को चुनौती दी गई है, इसलिए दोनों ही रिट याचिकाओं को एक साथ सुना गया । याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल सुश्री इंदिरा जय सिंह की मुख्य दलील यह है कि उपरोक्त दोनों ही धाराएं अर्थात् हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6(क) और संरक्षक और प्रतिपाल्य अधिनियम की धारा 29(ख) संविधान के समानता खंड की अतिक्रमणकारी हैं, चूंकि अवयस्क की माता को मात्र लिंग के आधार पर पदावनत कर दिया गया है और अवयस्क

[1] (1999) 2 एस. सी. सी. 228.

के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में उसके अधिकार को केवल उसके पिता के 'पश्चात्' संज्ञेय बनाया गया है । इसलिए, विद्वान् काउंसेल के अनुसार दोनों ही धाराओं को असंवैधानिक के रूप में समाप्त किया जाना चाहिए ।

6. हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 6 निम्नलिखित है –

"**6. हिन्दू अप्राप्तवयता के नैसर्गिक संरक्षक –** हिन्दू अप्राप्तवयता के नैसर्गिक संरक्षक अप्राप्तवयता के शरीर के बारे में और (अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति में उसके अविभक्त हित को छोड़कर) उसकी संपत्ति के बारे में भी, निम्निलिखत है –

(क) किसी लड़के या अविवाहिता लड़की की दशा में – पिता और उसके पश्चात् माता : परन्तु जिस अप्राप्तवय ने पांच वर्ष की आयु पूरी न कर ली हो उसकी अभिरक्षा मामूली तौर पर माता के हाथ में होगी ;

(ख) अधर्मज लड़के या अधर्मज अविवाहिता लड़की की दशा में – माता और उसके पश्चात् पिता ;

(ग) विवाहिता लड़की की दशा में – पति :

परन्तु कोई भी व्यक्ति यदि –

(क) वह हिन्दू नहीं रह गया है ; या

(ख) वह वानप्रस्थ या यित या सन्यासी होकर संसार को पूणर्तः और अन्तिम रूप से त्याग चुका है,

तो इस धारा के उपबन्ध के अधीन अप्राप्तवयता के नैसर्गिक संरक्षक के रूप में कार्य करने का हकदार न होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा में "पिता" और "माता" पदों के अन्तर्गत सौतेला पिता और सौतेली माता नहीं आते ।"

7. 'नैसर्गिक संरक्षक' अभिव्यक्ति को हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 4(ग) में परिकल्पित किया गया है,

जैसा कि धारा 6 (उपरोक्त) में उल्लिखित दोनों में से किसी (पिता और माता) संरक्षक को परिभाषित किया गया है । 'संरक्षक' शब्द को हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 4(ख) में ऐसे व्यक्ति के रूप में परिभाषित किया गया है, जो किसी अवयस्क के शरीर या उसकी संपत्ति या शरीर और संपत्ति, दोनों की देखभाल करता है और इसमें अन्य लोगों के साथ-साथ नैसर्गिक संरक्षक भी सम्मिलित हैं । अतः, यह देखा गया है कि 'संरक्षक' और 'नैसर्गिक संरक्षक' की परिभाषाएं माता के विरुद्ध कोई पक्षपात नहीं करतीं और वह धारा 6 में उल्लिखित संरक्षकों में से एक संरक्षक होने के कारण निःसंदेह रूप से नैसर्गिक संरक्षक होगी, जैसाकि धारा 4(ग) में परिभाषित किया गया है । एकमात्र उपबंध, जिसका अपवाद दिया गया है, धारा 6(क) में पाया जाता है, जिसमें 'पिता और उसके पश्चात् माता' सम्मिलित हैं । (हमारे द्वारा बल दिया गया) इस वाक्यांश को सरसरी तौर पर पढ़े जाने पर यह विचार प्रकट होता है कि माता को केवल पिता के जीवनकाल के पश्चात् ही अवयस्क का नैसर्गिक संरक्षक माना जा सकता है । वास्तव में यही उस विचार का आधार प्रतीत होता है, जो भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा भी व्यक्त किया गया है ....।

8. जब कभी भी किसी अवयस्क की संरक्षकता के संबंध में उसके पिता और माता के मध्य विधि के किसी न्यायालय के समक्ष कोई विवाद उद्भूत होता है, तो इस धारा में 'पश्चात्' शब्द का कोई महत्व नहीं होगा चूंकि न्यायालय अवयस्क की अभिरक्षा और संरक्षकता के संबंध में उठाए गए प्रश्नों को विनिर्धारित करते हुए प्राथमिक रूप से अवयस्क के सर्वोच्च हितों और व्यापकतम भाव में उसके कल्याण के बाबत संबद्ध होता है । तथापि, यह प्रश्न तब महत्वपूर्ण हो जाता है, जब माता मामले के न्यायालय में जाए बिना पिता के जीवनकाल के दौरान अवयस्क के संरक्षक के रूप में कार्य करती है और ऐसी किसी भी कार्रवाई की विधिमान्यता को न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी जाती है कि वह धारा 6(क) को दृष्टि में रखते हुए अवयस्क की विधिक संरक्षक नहीं है...... ।

9. क्या यह इस धारा को समझे जाने का सही तरीका है और क्या इस धारा में 'पश्चात्' शब्द का अर्थ केवल 'जीवनकाल के पश्चात्' होता है ? यदि इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है, तो इस धारा को असंवैधानिक उपबंध के रूप में समाप्त कर दिया जाना चाहिए, चूंकि यह धारा नि:संदेह रूप से लिंग समानता, जो हमारे संविधान के आधारी सिद्धांतों में से एक है, का अतिक्रमण करती है । हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम वर्ष 1956 में प्रभाव में आया अर्थात् संविधान लागू होने के 6 वर्ष के पश्चात् । क्या संसद् का आशय संवैधानिक सीमाओं का उल्लंघन करना था या संविधान द्वारा प्रत्याभूत मूल अधिकारों का अनदेखा करना था जो आवश्यक रूप से लिंग के आधार पर भेदभाव को प्रतिषिद्ध करते हैं ? हमारे विचार में नहीं । यह सुस्थापित है कि यदि किसी एक अर्थान्वयन के आधार पर कोई विशेष कानून असंवैधानिक हो जाएगा, जबकि किसी अन्य अर्थान्वयन के आधार पर, जो कि संभव है, वही कानून संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहता है, तो न्यायालय इस आधार पर पश्चात्वर्ती अर्थान्वयन को पूर्विकता प्रदान करेगा कि विधानमंडल से यह प्रत्याक्षा की जाती है कि वह संविधान के अनुसार कार्य कर रहा है और न्यायालय भी समान रूप से उस कानून के कानूनी उपबंधों की संवैधानिकता के पक्ष में कार्य करेंगे ।

10. हमारा विचार है कि धारा 6(क) ऐसे किसी अर्थान्वयन के समर्थ है, जो उसको संवैधानिक सीमाओं के भीतर बनाए रखती है । यह आवश्यक नहीं है कि 'पश्चात्' शब्द का अर्थ 'जीवनकाल के पश्चात्' लिया जाए । वह संदर्भ, जिसमें धारा 6(क) में यह प्रतीत होता है, का अर्थ यह है कि 'की अनुपस्थिति में', इस धारा में 'अनुपस्थिति' शब्द को अवयस्क के शरीर या उसकी संपत्ति की देखभाल से कोई भी कारण, वह कुछ भी हो, पिता की अनुपस्थिति को निर्दिष्ट करती है । यदि पिता अवयस्क के मामलों के प्रति पूर्णतया उदासीन है, चाहे वह माता के साथ रह रहा हो या पिता

और माता के मध्य पारस्परिक सहमति के कारणवश, माता को अवयस्क की देखभाल का अनन्य रूप से प्रभार दे दिया गया है या यदि पिता उस स्थान से अन्यत्र निवास करने के कारण, जहां माता और अवयस्क निवास करते हैं, अथवा मानसिक अक्षमता के कारणवश शारीरिक रूप से अवयस्क की देखभाल कर पाने में असमर्थ है, तो ऐसी समस्त स्थितियों में पिता को अनुपस्थित माना जा सकता है और माता संरक्षक के रूप में मान्यता प्राप्त नैसर्गिक संरक्षक होने के कारण वयस्क की तरफ से विधिमान्य रूप से कार्य कर सकती है । यह निर्वचन धारा 6(क) की भाषा में कोई अतिक्रमण कारित किए बिना हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम की धारा 4 और 6(क) के सामंजस्यपूर्ण अर्थान्वयन का नैसर्गिक परिणाम होगा ।"

9. संरक्षक के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति की जानी चाहिए या वस्तुत: संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति की घोषणा, ताकि उसको उचित रीति में नियुक्त संरक्षक कहा जा सके, विधित: संरक्षक एक मामला होता है और अवयस्क की अभिरक्षा बिल्कुल ही अन्य मामला होता है । इस मामले में फाइल की गई याचिका, जो पति और पत्नी, अवयस्क बेबी गर्विता के पिता और माता, के अलगाव के परिणामस्वरूप फाइल की गई है, से यह दर्शित होता है कि यह याचिका उसकी अभिरक्षा के लिए फाइल की गई थी, चूंकि उसके माता-पिता एक साथ निवास नहीं करते । इस प्रकार की याचिका, जिसके द्वारा अवयस्क की अभिरक्षा की ईप्सा की जाती है, के बाबत अधिनियम की धारा 25 में उपबंध है, जो अधिनियम के अध्याय 3 में विद्यमान हैं और जो अभिरक्षकों के कर्तव्यों, अधिकारों और दायित्वों के बारे में उपबंधित करता है । धारा 25 को नीचे उद्धृत किया गया है :–

"**25. प्रतिपाल्य की अभिरक्षा का संरक्षक का हक** – (1) यदि प्रतिपाल्य अपने शरीर के संरक्षक की अभिरक्षा को छोड़ देता है या उससे हटा दिया जाता है, तो, यदि न्यायालय का यह विचार है कि प्रतिपाल्य के लिए यह कल्याणकर होगा कि वह संरक्षक की

अभिरक्षा में लौट आए, तो वह उसके लौट आने के लिए आदेश कर सकेगा और उस आदेश का प्रवर्तन कराने के प्रयोजन से प्रतिपाल्य को गिरफ्तार करा सकेगा और संरक्षक की अभिरक्षा में रखे जाने के लिए उसे परिदत्त करा सकेगा ।

(2) प्रतिपाल्य की गिरफ्तारी के प्रयोजन से न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1882 (1882 का 10) की धारा 100 द्वारा प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रदत्त शक्ति का प्रयोग कर सकेगा ।

(3) ऐसे व्यक्ति के पास, जो उसका संरक्षक नहीं है, प्रतिपाल्य का अपने संरक्षक की इच्छा के विरुद्ध निवास, स्वत: संरक्षकता का पर्यवसान नहीं कर देता ।"

10. धारा 25 की अधिकारिता का अवलंब तब लिया जा सकता है, जब कोई प्रतिपाल्य अपने संरक्षक की अभिरक्षा से चला जाता है या उसको उसके संरक्षक की अभिरक्षा से दूर कर दिया जाता है । इस प्रकार के किसी भी मामले में, कानून की वाक्य रचना को लागू करते हुए यदि न्यायालय का यह विचार होता है कि यह प्रतिपाल्य के कल्याण में होगा कि उसको उसके संरक्षक की अभिरक्षा में लौटा दिया जाए, तो न्यायालय उसकी वापसी के लिए आदेश पारित कर सकता है और इस आदेश के प्रवर्तन के प्रयोजनार्थ प्रतिपाल्य को गिरफ्तार भी करा सकता है और संरक्षक की अभिरक्षा में भी सौंप सकता है । यही वह शक्ति है जिसका प्रयोग तब किया जा सकता है जब अवयस्क के पिता और माता, जो दोनों ही नैसर्गिक संरक्षक हैं, आपसी मनमुटाव के कारण पृथक् रूप से निवास कर रहे हों और तब यह प्रश्न उद्भूत होता है कि अवयस्क की अभिरक्षा होनी चाहिए । इस प्रकार की स्थिति ऐसी स्थिति नहीं है, जो अवयस्क की शारीरिक अभिरक्षा या उसकी संपत्ति की अभिरक्षा के लिए अभिरक्षक की नियुक्ति किए जाने की शक्ति के प्रयोग की अपेक्षा करती हो, किंतु उस शक्ति को प्रयोग की अपेक्षा करती है कि दोनों अभिरक्षकों में से किसको अभिरक्षा प्रदान की जानी चाहिए । भारत में परंपरागत रूप से न्यायालयों ने उन युग्मों, जिनके मध्य मनमुटाव है के बच्चों से संबंधित विवादों में संरक्षण का मामला निर्णीत किए जाने के प्रयोजनार्थ

अधिनियम की धारा 25 के अधीन अधिकारिता को स्वीकार किया है, उसका अनुसरण किया है और अवरुद्ध किया है । इस संबंध में **कलीमुन्निसा** बनाम **शाह सलीम खान रहमान खान**[1] वाले मामले में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विनिश्चय को निर्दिष्ट किया गया । इस विनिश्चय में अवयस्क के पिता और माता ऐसे युग्ल थे जिनके मध्य मनमुटाव था और पिता ने पुनर्विवाह कर लिया था और अपना दूसरा परिवार बसा लिया था । अवयस्क की देखभाल उसकी माता, जिसने पुनर्विवाह नहीं किया, द्वारा की जा रही थी । अवयस्क द्वारा सात वर्ष की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात् उसके पिता ने अधिनियम की धारा 10 के अधीन यह प्रार्थना करते हुए आवेदन प्रस्तुत किया कि उसको अवयस्क का संरक्षक नियुक्त किया जाए और अवयस्क की अभिरक्षा उसको प्रदान की जाए । इस आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा मंजूर कर लिया गया । अपील किए जाने पर अवयस्क की माता द्वारा यह आरंभिक आक्षेप उठाया गया कि अपील का प्रत्यर्थी अवयस्क का पिता होने के नाते व्यक्तिगत विधि, जो पक्षों पर लागू होती है, के अंतर्गत उसका नैसर्गिक संरक्षक है । अत: पिता को यह अधिकार नहीं है कि वह संरक्षक के रूप में नियुक्ति या घोषणा की ईप्सा करते हुए अधिनियम की धारा 7 के अधीन कोई आवेदन प्रस्तुत करे । न्यायालय ने **कलीमुन्निसा** (उपरोक्त) वाले मामले में इस प्रश्न को उत्तर दिया है, जो निम्नलिखित है :–

> "अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री के. एम. अग्रवाल ने आरंभिक आक्षेप उठाया, चूंकि प्रत्यर्थी अवयस्क का पिता होने के नाते व्यक्तिगत विधि के अंतर्गत उसका नैसर्गिक संरक्षक है, इसलिए उसके लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह संरक्षक के रूप में नियुक्ति और घोषणा के लिए धारा 7 के अधीन कोई आवेदन फाइल करता और, इसलिए, संपूर्ण कार्यवाही भ्रमपूर्ण है । इसमें कोई संदेह नहीं कि इस दलील में कुछ बल है । प्रत्यर्थी के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह स्वयं को संरक्षक के रूप में घोषित

---

[1] आई. एल. आर., 1977 एम. पी. 239.

या नियुक्त कराए जाने के लिए आवेदन फाइल करता । उसको उचित अनुक्रम उपलब्ध था कि वह अवयस्क की अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए अधिनियम की धारा 25 के अधीन आवेदन फाइल करता । इस धारा में प्रयुक्त भाषा से नि:संदेह रूप से यह प्रकट होता है कि यह धारा तभी आकर्षित होगी, जब कोई प्रतिपाल्य अपने संरक्षक की अभिरक्षा से दूर चला जाता है या उसको संरक्षक की अभिरक्षा से हटा दिया जाता है, किंतु किसी व्यक्ति, जो अभिरक्षक के अधिकार के अंतर्गत अवयस्क के प्रभार में है, द्वारा अवयस्क की अभिरक्षा अस्वीकार किए जाने के कारण इस धारा के अर्थान्तर्गत हटाया जाना होगा । बृजेन्द्र नारायण गांगुली बनाम चिंताहरण सरकार वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि अवयस्क बच्चे की अभिरक्षा जारी रखे जाने से आवेदकों के अधिकार के अस्वीकरण में गैर आवेदकों द्वारा किए गए कार्य अधिनियम की धारा 25 के अर्थान्तर्गत 'हटाया जाना'है । अत:, निचले न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए आवेदन को अधिनियम की धारा 25 के अधीन फाइल किया गया आवेदन प्रतीत किया जा सकता है और उस पर तद्नुसार विचार किया जा सकता है ।"

11. इस तथ्य का एक यह सूत्र कि नैसर्गिक अभिरक्षक, जैसेकि माता-पिता दोनों में कोई एक संरक्षक, उस संरक्षक से प्रजातिगत रूप से भिन्न होता है, जिसको अधिनियम की धारा 7 के अधीन नियुक्त किया जाता है या उसकी नियुक्ति की घोषणा की जाती है, जिसके आधार पर वह वस्तुत: कार्य करता है, अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (2) में विद्यमान है । धारा 7 की उपधारा (2), जिसे ऊपर उद्धृत किया गया है, से यह दर्शित होता है कि धारा 7 के अधीन पारित किया गया आदेश किसी अभिरक्षक, जिसको वसीयत या अन्य लिखत द्वारा नियुक्त किया गया है या न्यायालय द्वारा उसको नियुक्त किया गया है या नियुक्ति की घोषणा की गई है, को संरक्षकता से हटाए जाने के प्रयोजनार्थ क्रियान्वित होती है । उक्त उपबंध इस बात को स्पष्ट करता है कि

नैसर्गिक संरक्षक साधारणत: अध्याय 2 की योजना के अनुसार उपयुक्त नहीं होते या वे उन व्यक्तियों के कोटि के अंतर्गत आते हैं, जो अधिनियम की धारा 7 के अधीन न्यायालय की शक्तियों का अवलंब लेते हुए संरक्षक के रूप में नियुक्ति या घोषणा की ईप्सा करते हैं ।

12. यह बिल्कुल ही अन्य मामला है कि यदि कोई व्यक्ति, जो नैसर्गिक संरक्षक नहीं है, किसी अवयस्क के शरीर या उसकी संपत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त किया जाता है या इस बाबत कोई घोषणा की जाती है, तो संरक्षक, जिसको वसीयत या अन्य लिखत द्‌वारा नियुक्त नहीं किया गया है या न्यायालय द्‌वारा नियुक्त या घोषित नहीं किया गया है, अपनी हैसियत से हट जाएगा । आगे, अधिनियम की धारा 7 की उपधारा (3) इस विभेद को इस आज्ञा द्‌वारा स्पष्ट करती है कि यदि प्रतिपाल्य को वसीयत या अन्य लिखत द्‌वारा नियुक्त या न्यायालय द्‌वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक की देखभाल में दिया जाता है और उसके शरीर या संपत्ति या दोनों के लिए अन्य संरक्षक नियुक्त किया जाता है या धारा 7 के अधीन पारित किए गए आदेश द्‌वारा इस बाबत कोई घोषणा की जाती है, तो उसको इस प्रकार से नियुक्त नहीं किया जाएगा, जब तक कि पूर्ववर्ती आदेश द्‌वारा न्यायालय द्‌वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक की शक्तियां अधिनियम के उपबंधों के अनुसार समाप्त नहीं हो जातीं । किसी अवयस्क, जो अपने नैसर्गिक संरक्षक की संरक्षकता के अधीन है, के शरीर या संपत्ति या दोनों का संरक्षक नियुक्त किए जाने के मामले में ऐसा कोई निषेध नहीं है । अधिनियम की धारा 7, विशेष रूप से अध्याय 2 के अधीन परिकल्पित यह योजना नैसर्गिक संरक्षकों और उनके अलावा अन्य व्यक्तियों के मध्य स्पष्टत: विभाजन करती हैं । अत:, संरक्षक के रूप में नियुक्ति या घोषणा की ईप्सा करने की शक्ति सामान्यतया अपने प्रतिपाल्य की अभिरक्षा की ईप्सा किए जाने के प्रयोजनार्थ किसी नैसर्गिक संरक्षक को उपलब्ध अनुतोष से भिन्न होती है ।

13. इस मामले में याचिका के परिशीलन से सारत: पक्षों के मध्य

संबंध अवयस्क की अभिरक्षा के संबंध में, न कि अधिनियम की धारा 7 के अधीन संरक्षक की नियुक्ति के संबंध में दर्शित होते हैं । यह याचिका अधिनियम की धारा 25 में स्पष्टत: निर्दिष्ट किए जाने योग्य है और न कि धारा 7 में । अधिनियम की धारा 8 और 10, जिनके अधीन इस याचिका को फाइल किया गया है, को सारभूत उपबंधों के रूप में निर्दिष्ट किया जाना पूर्णत: भ्रमपूर्ण है । यह स्थिति होने के कारण अंतर्वलित पक्षों के अधिकार और वह अनुतोष, जिसका उन्होंने सारत: अवलंब लिया है, अधिनियम की धारा 25 के अधीन है, न कि धारा 7 के अधीन, इसलिए, अधिनियम की धारा 10(3) सपठित 1957 के सामान्य नियम (सिविल) के नियम 657 पर आधारित पोषणीयता के बाबत आक्षेप, जो सभी अधिनियम की धारा 7 के अधीन आरंभ की गई कार्यवाहियों में निर्दिष्ट किए जाने योग्य हैं, पूर्णत: भ्रमपूर्ण हैं ।

14. इसलिए, यह न्यायालय उन कारणों, जिनका अवलंब निचले न्यायालय द्वारा लिया गया, से पूर्णत: भिन्न कारणोंवश विद्वान् कुटुंब न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों से सहमत होता है ।

15. याचिका विफल होती है और एतद्द्वारा खारिज की जाती है । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

16. इस निर्णय की एक प्रति कार्यालय द्वारा अलीगढ़ कि कुटुंब न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश के माध्यम से संबद्ध कुटुंब न्यायालय को तुरंत अग्रेषित की जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

(2020) 2 सि. नि. प. 345 इलाहाबाद

स्वप्रेरणा से (न्यायालय द्वारा स्वप्रेरणा से लिया गया संज्ञान)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

[2020 की रिट याचिका (जनहित याचिका) संख्या 716]

तारीख 27 अगस्त, 2020

न्यायमूर्ति शशिकांत गुप्ता और न्यायमूर्ति शमीम अहमद

महामारी अधिनियम, 1897 (1897 का 3) – धारा 2 [सपठित भारत सरकार के गृह मंत्रालय द्वारा जारी कोविड-19 दिशानिर्देश] – खतरनाक महामारी के संबंध में विशेष उपाय करने की शक्तियां – महामारी का प्रसार रोके जाने के संबंध में विशेष उपाय कोविड-19 पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की नवीनतम सलाह को ध्यान में रखते हुए जनहित में, हुक्का बार, जहां हुक्का या जल पाइपलाइन के माध्यम से धूम्रपान किया जाता है, को प्रतिषिद्ध किया जाना आवश्यक है – उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव राज्य में संचालित बार, रेस्टोरेंट और कैफे संचालकों को उनके ग्राहकों को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलब्ध कराने से प्रतिषिद्ध करने के लिए निर्देश जारी करेंगे ।

संक्षेप में, मामले के तथ्य यह है कि श्री हरिगोविन्द दुबे, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय द्वारा संचालित विधि स्नातक (एकीकृत) के छात्र हैं, ने इस रिट याचिका द्वारा हुक्काबार के माध्यम से कोरोना वायरस के संक्रमण से संबंधित मामले को उठाया है और इन हुक्काबारों, रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को उत्तर प्रदेश राज्य में हुक्का की सेवाएं प्रदान करने से प्रतिषिद्ध किए जाने का अनुतोष चाहते हुए कार्रवाई किए जाने की ईप्सा की । इस न्यायालय द्वारा भी तारीख 7 जुलाई, 2020 के पत्र में अधिकथित तथ्यों पर विचारोपरांत तारीख 22 जुलाई, 2020 का आदेश पारित करते हुए उक्त पत्र और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों को रिट याचिका के रूप में प्रतीत किया । परिणामस्वरूप

उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव को इस बाबत कारण दर्शित करने के लिए निर्देशित किया गया कि क्यों न इस पत्र को इसमें की गई प्रार्थना पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ रिट याचिका के रूप में ग्रहण किया जाए । इस संबंध में मुख्य सचिव को ई-मेल और साथ ही फैक्स के द्वारा सूचना भेजी गई किंतु आदेश के बावजूद राज्य सरकार द्वारा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया । न्यायालय द्वारा मामले का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – इसी प्रक्रम पर उत्तर प्रदेश राज्य में कोविड-19 के संक्रमण, जो वर्तमान में खतरनाक रूप से अत्यधिक ज्यादा है,के विरुद्ध प्रयासों को मजबूती प्रदान किए जाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि उत्तर प्रदेश राज्य देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है और यह राज्य सामुदायिक संक्रमण के प्रक्रम पर है, जिसके कारण प्रत्येक दिन व्यतीत होने के साथ-साथ उच्चतम संख्या में मामले संसूचित होने के कारण यह राज्य अत्यंत शीघ्रतापूर्वक सभी राज्यों में सक्रिय मामलों की संख्या के मामले में चौथे स्थान पर पहुंच गया है, इस न्यायालय ने 2020 की जनहित याचिका संख्या 574 में संपूर्ण राज्य में कोविड-19 मामलों की घोरता में वृद्धि का संज्ञान लेते हुए राज्य सरकार को तारीख 25 अगस्त, 2020 के आदेश द्वारा संक्रमण को नियंत्रित किए जाने के लिए कार्य योजना प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया। न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की कि लॉकडाउन से निम्नतर कोई भी कार्रवाई सहायक सिद्ध नहीं होगी । यह महामारी कड़ाईपूर्वक लॉकडाउन के बावजूद जंगल में आग की भांति फैल रही है और मानव जीवन की विद्यमान्यता के लिए खतरा बनती जा रही है । स्थिति अत्यंत गंभीर है । हम अंधेरे में जंगल में खड़े हैं और हमकों यह नहीं मालूम की कल क्या होने वाला है । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कोरोना वायरस के मामले दिनोदिन बढ़ते जा रहे हैं और यदि सार्वजनिक स्थानों जैसे कि रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलब्ध कराने से निर्बंधित नहीं किया जाता, तो उत्तर प्रदेश में कोरोना वायरस के मामलों में बड़ी संख्या में सामुदायिक प्रसार होने के अवसर हैं । अभिलेख के परिशीलन से यह भी दर्शित होता है कि याची ने हुक्का धूम्रपान पर निर्बंधन अधिरोपित

किए जाने की ईप्सा करते हुए उच्चतर प्राधिकारियों की शरण भी ली थी, जिस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई । हम उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को निर्देश जारी करते हैं कि वे बार, रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को अपने ग्राहकों को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलबध कराने की अनुज्ञा प्रदान न करें, जब तक कि यह न्यायालय कोई अन्य आदेश पारित नहीं करता । उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव अपने व्यक्तिगत शपथ-पत्र के माध्यम से सुनवाई की अग्रिम तारीख तक अपना उत्तर और अनुपालन रिपोर्ट फाइल करेंगे । (पैरा 4, 5, 6, 7, 8 और 9)

आरंभिक रिट अधिकारिता : 2020 की रिट याचिका (जनहित याचिका) संख्या 716.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 32 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से कोई नहीं

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शशिकांत गुप्ता और न्यायमूर्ति शमीन अहमद ने दिया ।

न्या. गुप्ता और न्या. अहमद – श्री हरिगोविन्द दुबे, जो लखनऊ विश्वविद्यालय के विधि संकाय द्वारा संचालित विधि स्नातक (एकीकृत) का छात्र है, ने इस रिट याचिका द्वारा हुक्काबार के माध्यम से कोरोना वायरस फैलाए जाने से संबंधित कारण को उठाया है और हुक्का बारों, रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को उत्तर प्रदेश राज्य में हुक्का की सेवाएं प्रदान करने से प्रतिषिद्ध किए जाने के लिए अनुतोष चाहते हुए कार्रवाई किए जाने की ईप्सा की है ।

2. इस न्यायालय द्वारा तारीख 7 जुलाई, 2020 के पत्र में अधिकथित तथ्यों पर विचारोपरांत तारीख 22 जुलाई, 2020 का आदेश पारित करते हुए उक्त पत्र और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों को रिट याचिका (जनहित याचिका) के रूप में प्रतीत किया गया । परिणामस्वरूप उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव को इस बाबत कारण दर्शित करने के

लिए निर्देशित किया गया कि क्यों न इस पत्र को इसमें की गई प्रार्थना पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ रिट याचिका के रूप में स्वीकार कर लिया जाए । इस संबंध में मुख्य सचिव को ई-मेल और साथ ही फैक्स द्वारा सूचना भेजी गई किंतु आदेश के बावजूद राज्य सरकार द्वारा कोई उत्तर प्रस्तुत नहीं किया गया ।

3. यहां पर इस बात का भी उल्लेख किया जाता है कि हुक्का एक प्रकार का एकल या बहु-प्रणाली आधारित उपकरण होता है जिसको विभिन्न प्रकार के सुगंधित पदार्थों, जैसेकि तम्बाकू के धूम्रपान के लिए सदियों से प्रयोग किया जाता रहा है और यह उपकरण भारतीय उपमहाद्वीप में लोकप्रिय है । प्रथमदृष्ट्या धूम्रपान स्वतंत्र रूप से एक जोखिम भरे कारक के रूप में न केवल विभिन्न बीमारियों के संक्रमण के लिए बल्कि कोविड-19 जैसी गंभीर बीमारी के संक्रमण के लिए भी प्रकट होता है । इसी प्रकार से हुक्का द्वारा धुमपान भी प्रथमदृष्ट्या एक ही उपकरण के अनेक लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने के कारण संक्रमण वाली बीमारियों के फैलने के द्वारा संक्रमण को फैलाता है और उसको सुकर बनाता है । इसमें लगी हुई पानी की पाइप के माध्यम से अनेक लोगों द्वारा धूम्रपान किए जाने का अर्थ यह होता है कि अनेक प्रयोगकर्ताओं के मध्य धूम्रपान के लिए एक ही पाईप का प्रयोग किया जाता है, विशेष रूप से सार्वजनिक बैठकों में । इन लंबी पाईपों को स्वच्छ करने में कठिनाई के कारण और उनके साथ संलग्न शीतल जल संग्रह करने वाला बर्तन इसको कोरोना वायरस के संवितरण के लिए आदर्श बनाता है । इसके अतिरिक्त हुक्के से निकलने वाले धुंए में तम्बाकू के अतिरिक्त अनेक खतरनाक रसायन समाविष्ट होते हैं, जो श्वसन प्रणाली को क्षतिग्रस्त कर सकते हैं और धूम्रपान करने वाले को वायरल संक्रमण, निमोनिया और अन्य संक्रामक बीमारियों के प्रति सहज भेद्य बना देते हैं और कोरोना वायरस इसका कोई अपवाद नहीं है । जल की पाइप से धूम्रपान किए जाने के द्वारा हुक्का के माध्यम से संक्रमण फैलता है । हमारी संज्ञान में यह भी आया है कि कुछ देशों ने महामारी के चलते पहले ही हुक्का के प्रयोग पर निर्बंधन अधिरोपित किए हुए हैं । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाना अनावश्यक नहीं होगा कि हरियाणा के जिंद ग्राम में ऐसी ही एक घटना में अनेक लोगों के

मध्य एक ही उपकरण द्वारा हुक्का का प्रयोग किए जाने के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में लोगों को कोविड संक्रमण हुआ, जिसके परिणामस्वरूप पूरे ग्राम को सील कर दिया गया और साथ ही हुक्का के द्वारा धूम्रपान पर निर्बंधन अधिरोपित कर दिया गया । कोविड-19 पर विश्व स्वास्थ्य संगठन की नवीनतम सलाह और साथ ही हुक्का के प्रयोग पर विचार करते हुए यह आवश्यक है कि व्यापक जनहित में हुक्का या जल की पाइप के द्वारा धूम्रपान को वर्तमान महामारी के दौरान हुक्का धूम्रपान के माध्यम से कोविड-19 के संक्रमण को निर्बंधित किए जाने को सुनिश्चित किए जाने के प्रयोजनार्थ विनियमित/प्रतिषिद्ध किया जाना चाहिए ।

4. इसी प्रक्रम पर उत्तर प्रदेश राज्य में कोविड-19 के संक्रमण, जो वर्तमान में खतरनाक रूप से अत्यधिक ज्यादा है,के विरुद्ध प्रयासों को मजबूती प्रदान किए जाने पर ध्यान दिया जाना चाहिए । यहां पर इस बात का उल्लेख किया जाता है कि उत्तर प्रदेश राज्य देश में सर्वाधिक जनसंख्या वाला राज्य है और यह राज्य सामुदायिक संक्रमण के प्रक्रम पर है, जिसके कारण यह राज्य प्रत्येक दिन व्यतीत होने के साथ-साथ उच्चतम संख्या में मामले संसूचित होने के कारण अत्यंत शीघ्रतापूर्वक सभी राज्यों में सक्रिय मामलों की संख्या के मामले में चौथे स्थान पर पहुंच गया है । इस न्यायालय ने 2020 की जनहित याचिका संख्या 574 में संपूर्ण राज्य में कोविड-19 मामलों की घोरता में वृद्धि का संज्ञान लेते हुए राज्य सरकार को तारीख 25 अगस्त, 2020 के आदेश द्वारा संक्रमण को नियंत्रित किए जाने के लिए कार्य योजना प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया । न्यायालय ने यह मताभिव्यक्ति की कि लॉकडाउन से निम्नतर कोई भी कार्रवाई सहायक सिद्ध नहीं होगी ।

5. यह महामारी कड़ाईपूर्वक लॉकडाउन के बावजूद जंगल में आग की भांति फैल रही है और मानव जीवन की विद्यमानता के लिए खतरा बनती जा रही है । स्थिति अत्यंत गंभीर है । हम अंधेरे में जंगल में खड़े हैं और हमको यह नहीं मालूम की कल क्या होने वाला है ।

6. इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि कोरोना वायरस के मामले दिनोंदिन बढ़ते जा रहे हैं और यदि सार्वजनिक स्थानों जैसेकि रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलब्ध कराने से

निर्बंधित नहीं किया जाता, तो उत्तर प्रदेश में कोरोना वायरस के मामलों का बड़ी संख्या में सामुदायिक प्रसार होने के अवसर हैं ।

7. अभिलेख के परिशीलन से यह भी दर्शित होता है कि याची ने हुक्का धूम्रपान पर निर्बंधन अधिरोपित किए जाने की ईप्सा करते हुए उच्चतर प्राधिकारियों की शरण भी ली थी, जिस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई ।

8. हम उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्य सचिव को निर्देश जारी करेंगे कि वे बार, रेस्टोरेंट्स और कैफेज़ को अपने ग्राहकों को तत्काल प्रभाव से हुक्का उपलब्ध कराने की अनुज्ञा प्रदान न करें, जब तक कि यह न्यायालय कोई अन्य आदेश पारित नहीं करता ।

9. उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव अपने व्यक्तिगत शपथ-पत्र के माध्यम से सुनवाई की अगली तारीख तक अपना उत्तर और अनुपालन रिपोर्ट फाइल करेंगे ।

10. इस मामले को तारीख 30 सितंबर, 2020 को असूचीबद्ध के रूप में सूचीबद्ध किया जाए ।

11. हम मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, इस मामले में अधिवक्ता, श्री विनायक निथाल को न्यायमित्र के रूप में नियुक्त करते हैं, जो न्यायालय की सहायता करेंगे ।

12. कार्यालय को निर्देशित किया जाता है कि इस आदेश की एक प्रति के साथ वर्तमान मामले से संबंधित समस्त कागजात एक सप्ताह के भीतर अधिवक्ता, श्री विनायक निथाल को उपलब्ध करा दिए जाएं ।

13. इस न्यायालय के महारजिस्टार को निर्देशित किया जाता है कि वे इस आदेश की एक प्रति उत्तर प्रदेश राज्य के मुख्य सचिव और उत्तर प्रदेश के सभी जिला अधिकारियों को आवश्यक अनुपालन के लिए तुरंत भेजें ।

तद्नुसार निस्तारण किया गया है ।

शु.

मिश्री खान और अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

(2017 की खंड न्यायपीठ रिट याचिका सं. 14915)

तारीख 17 दिसंबर, 2019

न्यायमूर्ति संगीत लोढ़ा और न्यायमूर्ति विनीत कुमार माथुर

खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 (1957 का 67) – धारा 15 और 21(5) [सपठित राजस्थान लघु खनिज रियायत नियम, 1986 का नियम 48(4)] – अप्राधिकृत उत्खनन के लिए शास्ति – 1986 के नियम का नियम 48(4) विधिक प्राधिकार के बिना उत्खनित खनिजों की लागत के अतिरिक्त किराया, रॉयल्टी या प्रभार्य कर की वसूली के लिए उपबंधित करता है – यह नियम 1957 के अधिनियम की धारा 21(5) के उपबंधों के सामंजस्य में है – यह नियम संवैधानिक रूप से विधिमान्य अभिनिर्धारित किया जाता है ।

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 246 और 14 [सपठित खान और खनिज (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1957 की धारा 15(1)] – विधायी सक्षमता – अप्राधिकृत उत्खनन के लिए शास्ति – क्या अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों को नियंत्रित किए जाने के लिए अंगीकृत उपाय और अप्राधिकृत रूप से उत्खनित खनिजों की लागत की वसूली खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतों को प्रदान करने वाले विनियम से प्रत्यक्षत: संबंधित हैं – यह नहीं कहा जा सकता कि नियम 48, जो अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों पर विचार करता है, को विरचित करना राज्य सरकार की विधायी सक्षमता के परे है ।

संक्षेप में, 2017 की रिट याचिका संख्या 14915 के तथ्य यह है कि याची संख्या 1 और 2 के पिता और याची संख्या 3 के ससुर फतेह

खान ने जिला जोधपुर के ग्राम फलोरी स्थित खसरा संख्या 703 वाली भूमि, जो खसरा संख्या 705 वाली सरकारी भूमि से जुड़ी हुई है, के खातेदार किराएदार थे । तारीख 15 जून, 2007 को खनन विभाग के तकनीकी दल ने खसरा संख्या 703 और 705 वाली भूमि का निरीक्षण किया और पाया कि खनिज चिनाई पत्थर का अप्राधिकृत रूप से उत्खनन किया जा रहा है । स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार पंचनामा तैयार किया गया । 1957 के खान और खनिज (विकास और विनियम) अधिनियम की धारा 4(1)(1क) सपठित 1986 के नियम के नियम 48 और 2006 के राजस्थान खनिज (अवैध खनन, यातायात और भंडारण की रोकथाम) नियम के अधीन तारीख 10 जुलाई, 2007 को सहायक खनन अभियंता द्वारा फतेह खान और इस रिट याचिका के याची संख्या 1 और 2 मिश्री खान और लतीफ खान को सूचना जारी की गई । अप्राधिकृत रूप से उत्खनित खनिज की मात्रा 6,840 टन पाई गई और तद्नुसार खनिज की लागत 5,47,200/- रुपए विनिर्धारित की गई और बलेसर के सहायक अभियंता (खान) द्वारा जोधपुर के अधीक्षण खनन अभियंता से तारीख 19 सितंबर, 2007 के पत्र द्वारा वसूली के अनुमोदन की ईप्सा की गई । अधीक्षण अभियंता ने फतेह खान को मांग के विरुद्ध अपने आक्षेप प्रस्तुत करने के लिए तारीख 23 अक्तूबर, 2007 की सूचना जारी की । तत्पश्चात्, अधीक्षण अभियंता द्वारा तारीख 17 जुलाई, 2013 के पत्र द्वारा मांग का अनुमोदन कर दिया गया । याचियों का यह पक्षकथन नहीं है कि उनके विरुद्ध की गई मांग के विरुद्ध कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर उनके द्वारा कोई आक्षेप फाइल किए गए । अत: मांग अंतिम हो चुकी है । इसी दौरान फतेह खान की तारीख 3 अगस्त, 2014 को मृत्यु हो गई । बलेसर के सहायक खनन अभियंता ने 1956 के राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम की धारा 256/257 के उपबंधों के अधीन भू-राजस्व के अधिशेष के रूप में मांग की वसूली के लिए बलेसर के सहायक खनन अभियंता (वसूली) के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया । तत्पश्चात्, याची संख्या 1 और 2 ने बलेसर के सहायक खनन अभियंता पर अपने काउंसेल द्वारा तारीख 26 नवंबर,

2015 की सूचना न्याय की मांग करते हुए तामील की । इसी प्रकार याचियों द्वारा फाइल की गई 2016 की रिट याचिका संख्या 10477 के संक्षेप में तथ्य यह है कि याची को ग्रेनाइड खनिज के उत्खनन के लिए जिला सिरोही की तहसील रेवदार के ग्राम जेरावल के निकट स्थित 100 × 60 वर्ग फीट माप वाले खनन क्षेत्र के बाबत खनन पट्टा संख्या 349/89, 1986 के नियम के उपबंधों के अधीन प्रदान किया गया था, जो आरंभिक रूप से तारीख 2 जनवरी, 1991 से 20 वर्षों की अवधि के लिए था और उसका नवीकरण तारीख 1 जनवरी, 2011 से 20 वर्षों की अवधि के लिए कर दिया गया था । याची को पट्टे पर दिए गए खनन क्षेत्र का खनन अभियंता द्वारा निरीक्षण किया गया, जिसने पाया कि याची उस खनन क्षेत्र द्वारा आच्छादित क्षेत्र के बाहर के क्षेत्र में भी ग्रेनाइट खनिज का अप्राधिकृत रूप से उत्खनन में अंतर्वलित है और तद्नुसार पंचनामा तैयार किया गया । खनन अभियंता ने याची को तारीख 8 अगस्त, 2011 की सूचना यह दर्शित करने के लिए जारी की कि क्यों न उसके विरुद्ध 1986 के नियम के नियम 48 के अधीन कार्यवाही आरंभ की जाए । खान का निरीक्षण खनन अभियंता द्वारा याची के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में तारीख 22 जुलाई, 2011 को पुन: किया गया । तत्पश्चात्, खनन अभियंता ने तारीख 13 जनवरी, 2012 की एक अन्य सूचना द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2012 और 24 जनवरी, 2012 को याची की उपस्थिति में स्थल के निरीक्षण का प्रस्ताव दिया । याची के अनुसार उसने तारीख 23 जनवरी, 2012 को एक आवदेन यह अभिकथित करते हुए प्रस्तुत किया कि वह अपने निकट नातेदार की मृत्यु के कारण तारीख 23 जनवरी, 2012 और 24 जनवरी, 2012 को स्थल निरीक्षण के समय उपस्थित होने में असमर्थ है । खनन अभियंता द्वारा स्थल का निरीक्षण निर्धारित तारीख पर किया गया और स्थल निरीक्षण रिपोर्ट और पंचनामा तैयार किया गया । वे खनिज जिनका उत्खनन याची द्वारा अवैध रूप से किया गया था, की माप की गई और उसकी मात्रा 2696 वर्ग मीटर पर 7488 मेट्रिक टन पाई गई । वे खनिज ब्लॉक, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया था, स्थल

पर उपलब्ध हैं और उनका कब्जा राज्य द्वारा ले लिया गया । याची ने उन खनिज ब्लॉकों को निर्मुक्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, किंतु कोई कार्रवाई नहीं हुई । अधीक्षण खनन अभियंता ने दो भिन्न निरीक्षण किए जाने के कारण उन खनिजों के संबंध में, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया, में असंगतता पाते हुए सिरोही के खनन अभियंता को पुन: पंचनामा तैयार करने का निर्देश दिया और पट्टाधारक से उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् अनुमोदन के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया । तत्पश्चात्, वह खनिज जिसका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया था, की खनन अभियंता द्वारा मात्रा 1,31,04,000/- रुपए आंकी गई, जिसका अनुमोदन किया गया और याची को तारीख 13 अगस्त, 2012 की मांग की सूचना जारी की गई । तत्पश्चात् याची द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रत्यावेदन, जिसके द्वारा खनन अभियंता के पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यवहार के विरुद्ध शिकायत की गई थी, पर विचार करते हुए अधीक्षण खनन अभियंता ने तारीख 24 अगस्त, 2012 के आदेश द्वारा खनन अभियंता (सर्तकता) की अध्यक्षता में एक दल का गठन किया और जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निर्दिशित किया । तत्समय, सिरोही के खनन अभियंता ने याची के विरुद्ध 1,31,04,000/- रुपए की मांग करते हुए तारीख 30 अगस्त, 2012 की सूचना जारी कर दी । अधीक्षण खनन अभियंता द्वारा जारी तारीख 15 अक्तूबर, 2014 के आदेश के अनुसरण में बलेसर के सहायक खनन अभियंता और फोरमैन-II ने स्वीकृत खनन पट्टा संख्या 349/90 (नया खनन पट्टा संख्या 20/10) के सीमांकन का सत्यापन किया और रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी । यह रिपोर्ट तारीख 5 दिसंबर, 2014 को प्रस्तुत की गई, जिसके द्वारा वह खनिज, जिसका अवैध रूप से उत्खनन किया गया था, का मूल्य 914.76/- रुपए प्रति मैट्रिक टन पाया गया और इस खनिज की लागत रॉयल्टी का 10 गुणा अधिरोपित करते हुए 6,40,332/- रुपए आंकी गई । खनन अभियंता ने वसूले जाने योग्य रकम, जिसका आकलन तारीख 22 जुलाई, 2011, 23 जनवरी, 2012, 19 सितंबर, 2013 और 5 दिसंबर, 2014 को किए गए तीन निरीक्षणों

के आधार पर किया गया था, के संबंध में स्पष्टीकरण मांगा । ऐसा प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध अंततः 1,31,04,000/- रुपए की मांग का अनुमोदन कर दिया गया । इस प्रकार से सृजित की गई मांग की वैधता को याची द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है, जो अभिकथित रूप से लंबित है । इस पुनरीक्षण याचिका के लंबन के दौरान याचियों ने प्रस्तुत रिट याचिका इस न्यायालय के समक्ष फाइल की । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – याचियों का यह पक्षकथन नहीं है कि उनके विरुद्ध 1986 के नियम के नियम 48 के उपनियम (1), (2) या (2-क) के अतिलंघन के लिए उपनियम (3) के अधीन दांडिक कार्यवाहियां आरंभ कर दी गई हैं और इसलिए 1986 के नियम के नियम 48 के वायरस को याचियों द्वारा इस आधार पर चुनौती दिया जाना कि राज्य सरकार द्वारा नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित उक्त नियम, जो अप्राधिकृत अधिभोग के लिए अपराधों, शास्तियों और अभियोजनों के लिए उपबंधित करता है, राज्य की विधायी सक्षमता के पड़े है और इसलिए अधिकारातीत (Ultra vires) घोषित किए जाने योग्य है और वास्तव में 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को याचियों द्वारा चुनौती दिया जाना वास्तव में आक्षेपित मांग की सूचनाओं को चुनौती देते हुए याचिकाओं में उठाए गए विवाद की परिधि के परे चला जाता है । खनिज के मूल्य की वसूली में शास्ति का तत्व अंतर्वलित नहीं होता और खनिज की वसूली या उसके मूल्य की वसूली कोई दांडिक कार्रवाई नहीं है बल्कि यह मात्र क्षतिपूर्ति की कार्यवाही है, जिसको माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कर्नाटक रेयर अर्थ और एक अन्य बनाम वरिष्ट भूगर्भशास्त्री, खान और भूगर्भशास्त्र विभाग और एक अन्य वाले मामले में स्थिरीकृत कर दिया गया है । किसी भी परिस्थिति में, चूंकि याचियों ने 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी है, इसलिए हम यह उचित समझते हैं कि इस पर विचार किया जाए । राज्य सरकार द्वारा 1986 के नियम 1957 के अधिनियम के अंतर्गत विरचित नियम के नियम 15 के अधीन

प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए लघु खनिजों के संबंध में खदान अनुज्ञप्तियों, खनन पट्टों और अन्य खनिज रियायतों और उनसे सहबद्ध प्रयोजनों के लिए विरचित किए गए हैं । यह सत्य है कि नियम 15 के उपनियम (1-क) में वे मामले विनिर्दिष्ट हैं, जिनके संबंध में राज्य सरकार नियम विरचित कर सकती है किंतु यह तब जबकि उपनियम (1-क) के अधीन विनिर्दिष्ट मामले सर्वांगीण न हों, बल्कि 1986 के नियम के नियम 15 के उपनियम (1), जो राज्य सरकार को पट्टों, खनन, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतें और उनसे सहबद्ध प्रयोजनों को विनियमित किए जाने के लिए नियम बनाने के लिए सशक्त करता है, के अधीन राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना हों । निश्चित रूप से लघु खनिजों के संबंध में अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ अंगीकृत उपाय और अप्राधिकृत रूप से उत्खनित खनिजों की लागत की वसूली प्रत्यक्षत: खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य लघु रियायतें प्रदान किए जाने को विनियमित किए जाने से संबंधित होते हैं और इसलिए याचियों द्वारा दी गई दलीलें के नियम के नियम 48, जो अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ है, का विधायन राज्य सरकार की विधायी सक्षमता के परे हैं, पूर्णत: गुणागुण रहित है । यह सत्य है कि 1957 के अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (2) का खंड (ड.) उक्त धारा के अधीन विरचित नियम के किसी नियम के अतिलंघन के लिए जुर्माना अधिरोपित किए जाने की प्रक्रिया और तरीका को विहित करता है और उस प्राधिकारी को भी विहित करता है, जो ऐसे किसी जुर्माने को अधिरोपित कर सकता है, तत्पश्चात् उक्त उपबंध किसी भी प्रकार से लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य लघु रियायतें प्रदान किए जाने और उनके साथ सहबद्ध प्रयोजनों, जिनको ऊपर स्पष्ट किया गया है और जिनमें अवैध खनन क्रियान्वनों को नियंत्रित करने की शक्ति भी सम्मिलित है और जो इस संबंध में विरचित किसी भी नियम के अतिक्रमण के लिए शास्ति अधिरोपित किए जाने के लिए उपबंधित करते हैं, को विनियमित करने वाले नियम

विरचित करने की राज्य सरकार को प्रदत्त व्यापक शक्तियों को किसी भी प्रकार से न्यून नहीं करते । अगर हम विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील पर विचार करते हैं कि 1957 के अधिनियम की धारा 21 अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों, अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियम के अनुसार न होकर अन्यथा रूप से खनिजों का यातायात और भंडारण किए जाने के लिए शास्ति के बाबत उपबंधित करते हैं और इसलिए इस विषय पर संसद् द्वारा अधिनियमित विधि द्वारा पहले ही क्षेत्र को आच्छादित कर लिए जाने के कारण राज्य सरकार नियम विरचित करने की अपनी प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करते हुए नियम के अतिक्रमण के लिए अपराध और शास्तियां उपबंधित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सारभूत उपबंध अधिनियमित नहीं कर सकती, इसलिए यह अवेक्षित किया जाता है कि धारा 21 की उपधारा (1) धारा 4 की उपधारा (1-क) या उपधारा (1) का अतिलंघन करती है, जिसके अधीन किया गया अपराध ऐसी अवधि के कारावास द्वारा दंडनीय है, जो पांच वर्ष तक विस्तारित हो सकता है और अप्राधिकृत खनन वाले क्षेत्र में पांच लाख रुपए प्रति हेक्टेयर के जुर्माने तक विस्तारित हो सकता है । धारा 4 की उपधारा (1) की आज्ञा है कि कोई भी व्यक्ति किसी क्षेत्र में कोई सर्वेक्षण, प्रस्तावित खनन या खन क्रियान्वयन नहीं करेगा, सिवाय किसी सर्वेक्षण अनुज्ञा या प्रस्तावित अनुज्ञप्ति या जैसा भी मामला हो, के नियमों और शर्तों के अधीन और उसके अनुसार । इसी प्रकार से उपधारा (1-क) उपबंधित करती है कि कोई व्यक्ति अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियम के उपबंधों के अनुसार किसी खनिज का यातायात या भंडारण नहीं करेगा या यातायात या भंडारण का कारण नहीं बनेगा । अतः निःसंदेह रूप से अन्य बातों के साथ-साथ प्रदान किए गए खनन पट्टे के नियमों और शर्तों के अतिलंघन में किया गया खनन क्रियान्वयन और 1957 के अधिनियम और इसके अधीन विरचित नियम के उपबंधों के अधीन यथाविहित खनिजों का यातायात या भंडारण 1957 के अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (1) के अधीन दंडनीय अपराध हैं, किंतु तत्पश्चात्

मात्र इस कारणवश कि खनन पट्टे के नियमों और शर्तों के अतिलंघन में खनन क्रियान्वयन को दंडनीय अपराध बनाया गया है, राज्य सरकार खनन क्रियान्वयनों को विनियमित करने के लिए अपने नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग और उन खनिजों, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया, की लागत वसूली और खनन क्रियान्वयनों को विनियमित किए जाने के लिए विरचित नियमों के अतिलंघन करने के लिए उपबंधित करने से वंचित नहीं होगी । वास्तविकता यह है कि धारा 21 की उपधारा (2) नियम विरचित करने वाले प्राधिकारी को उसके अतिलंघन के लिए नियम उपबंधित करने के लिए सशक्त करती है, जो कारावास की उस अवधि द्वारा दंडनीय होगा जो दो वर्ष तक विस्तारित हो सकता है या जुर्माने द्वारा दंडनीय होगा जो पांच लाख रुपए तक विस्तारित हो सकता है या दोनों के द्वारा दंडनीय होगा और यदि अतिलंघन निरंतर होता रहता है तो अतिरिक्त जुर्माने, जो प्रतिदिन, जिनके दौरान प्रथम अतिलंघन की दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसा अतिलंघन, जो जारी रहता है, पचास हजार रुपए तक विस्तारित हो सकता है, द्वारा दंडनीय होगा । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए धारा 48 की उपधारा (3), जो उपनियम (1), (2) या (2-क) के उपबंधों के अतिलंघन को ऐसी अवधि के कारावास द्वारा दंडनीय बनाती है, जो दो वर्ष तक विस्तारित हो सकता है या जुर्माने, जो पच्चीस हजार रुपए तक विस्तारित हो सकता है, के द्वारा दंडनीय हो सकता है या दोनों के द्वारा दंडनीय हो सकता है, 1957 की अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (2) के उपबंधों के सामंजस्य में है । यहां पर यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि धारा 21 की उपधारा (5) के उपबंधों की आज्ञा के अनुसार, जब कभी भी कोई व्यक्ति बिना किसी विधिक प्राधिकार के किसी भूमि से किसी खनिज का उत्खनन करता है, तो राज्य सरकार ऐसे व्यक्ति से इस प्रकार से निकाले गए खनिज की वसूली कर सकती है या जहां उस खनिज का पहले ही निस्तारण किया जा चुका है, तो उसके मूल्य की वसूली कर सकती है और ऐसे व्यक्ति से उस भूमि के संबंध में किराया, रॉयल्टी या कर, जैसा भी मामला हो, की भी वसूली उस अवधि के संबंध में, जिस

अवधि के दौरान भूमि उस व्यक्ति के कब्जे में बिना किसी विधिपूर्ण प्राधिकार के थीं, कर सकती है । अत: नियम 48 के उपनियम (4) के उपबंध, जो उन खनिजों के संबंध में, जिनका उत्खनन बिना किसी विधिक प्राधिकार के किया गया और जिसकी या तो रवानगी की जा चुकी है या जिसका उपभोग किया जा चुका है, किराया रॉयल्टी या कर के साथ लागत की वसूली के लिए उपबंधित करते हैं और यह भी 1957 की अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (5) के उपबंधों के सामंजस्य में है । ऊपर की गई चर्चा को दृष्टि में रखते हुए 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को याचियों द्वारा चुनौती दिया जाना संवैधानिक रूप से विधिमान्य घोषित किए जाने योग्य हैं । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, 15 और 16)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 2 एस. सी. सी. 783 : **कर्नाटक रेयर अर्थ और एक अन्य** बनाम **वरिष्ठ भूगर्भशास्त्री, खान और भूगर्भशास्त्र विभाग और एक अन्य** ;	8
[1975]	ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1549 : **मैसर्स खेमकर एंड कंपनी (एजेन्सीज) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ।	4

रिट (सिविल) अधिकारिता : **2017 की खंड न्यायपीठ रिट याचिका संख्या 14915.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री टी. एस. चम्पावत और परमवीर सिंह चम्पावत

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री संदीप साह (सहायक महाधिवक्ता) और सुश्री आक्षिती सिंघवी

आदेश

याचियों ने इन रिट याचिकाओं के माध्यम से 1986 के राजस्थान लघु खनिज रियायत नियम (संक्षेप में '1986 के नियम') के नियम 48, जो अन्य बातों के साथ-साथ अनधिकृत खनन क्रियान्वयनों के लिए उपबंधित करता है, की अधिकारिता को चुनौती दी है । याचियों ने अनधिकृत रूप से खनन किए गए खनिजों की लागत की वसूली के लिए खनन अभियंता द्वारा तत्समय लागू दरों पर देय रॉयल्टी का दस गुणा, जैसाकि 1986 के नियम के नियम 48 के उपनियम (5) के प्रथम परंतुक के अधीन उपबंधित है, संगणित करके जारी की गई मांग की सूचनाओं को भी प्रश्नगत किया है ।

2. समान्य विवाद्यकों को अंतर्वलित करने वाली इन दोनों याचिकाओं को एक साथ सुना गया और इस सामान्य निर्णय द्वारा निर्णीत किया जा रहा है ।

3. विरचित विवाद्यकों का मूल्यांकन किए जाने पर जो सुसंगत तथ्यों उद्भूत हुए, संक्षेप में इस प्रकार हैं :-

खंड न्यायपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 14915/17

याची संख्या 1 और 2 के पिता और याची संख्या 3 के ससुर श्री फतेह खान जिला जोधपुर के ग्राम फलोरी स्थित खसरा संख्या 703 वाली भूमि, जो जिला जोधपुर के ग्राम फलोरी में स्थित है और खसरा संख्या 705 वाली सरकारी भूमि से जुड़ी हुई है, के खातेदार किराएदार थे । तारीख 15 जून, 2007 को खनन विभाग के तकनीकी दल ने खसरा संख्या 703 और 705 वाली भूमि का निरीक्षण किया और यह पाया कि खनिज चिनाई पत्थर का अप्राधिकृत रूप से उत्खनन किया जा रहा है ।

स्थल निरीक्षण रिपोर्ट के अनुसार पंचनामा तैयार किया गया । 1957 के खान और खनिज (विकास और विनियम) अधिनियम की धारा 4(1)(1क) सपठित 1986 के नियम के नियम 48 और 2006

के राजस्थान खनिज (अवैध खनन, यातायात और भंडारण की रोकथाम) नियम के अधीन तारीख 10 जुलाई, 2007 को सहायक खनन अभियंता द्वारा श्री फतेह खान और इस रिट याचिका के याची संख्या 1 और 2 मिश्री खान और लतीफ खान को सूचना जारी की गई । अनधिकृत रूप से उत्खनित खनिज की मात्रा 6,840 टन पाई गई और तद्नुसार खनिज की लागत 5,47,200/- रुपए विनिर्धारित की गई और बलेसर के सहायक अभियंता (खान) द्वारा जोधपुर के अधीक्षण खनन अभियंता से तारीख 19 सितंबर, 2007 के पत्र द्वारा वसूली के लिए अनुमोदन की ईप्सा की गई । अधीक्षण अभियंता ने फतेह खान को मांग के विरुद्ध अपने निवेदन, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए तारीख 23 अक्तूबर, 2007 की सूचना जारी की । तत्पश्चात्, अधीक्षण अभियंता द्वारा तारीख 17 जुलाई, 2013 के पत्र द्वारा अनुमोदन प्रदान कर दिया गया । याचियों का यह पक्षकथन नहीं है कि उनके द्वारा की गई मांग के विरुद्ध कार्यवाहियों के किसी भी प्रक्रम पर कोई आक्षेप फाइल किए गए थे । अतः मांग अंतिम हो चुकी है । इसी दौरान श्री फतेह खान की तारीख 3 अगस्त, 2014 को मृत्यु हो गई । बलेसर के सहायक खनन अभियंता ने 1956 के राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम की धारा 256/257 के उपबंधों के अधीन भू-राजस्व के अधिशेष के रूप में मांग की वसूली के लिए बलेसर के सहायक खनन अभियंता (वसूली) के समक्ष आवेदन प्रस्तुत किया । याची संख्या 1 और 2 ने बलेसर के सहायक खनन अभियंता पर अपने काउंसेल द्वारा तारीख 26 नवंबर, 2015 की सूचना न्याय की मांग करते हुए तामील की ।

खंड न्यायपीठ सिविल रिट याचिका संख्या 10477/16

याची को ग्रेनाइट खनिज के उत्खनन के लिए जिला सिरोही की तहसील रेवदार के ग्राम जिरावल के निकट स्थित 100 × 60 वर्गफीट माप वाले खनन क्षेत्र (खनन पट्टा संख्या 349/89) को

1986 के नियम के उपबंधों के अधीन खनन का पट्टा प्रदान किया गया । खनन पट्टा, जो आरंभिक रूप से तारीख 2 जनवरी, 1991 से 20 वर्षों की अवधि के लिए प्रदान किया गया था, का नवीकरण तारीख 1 जनवरी, 2011 से 20 वर्षों के लिए कर दिया गया था । याची को पट्टे पर दिए गए खनन क्षेत्र का खनन अभियंता द्वारा निरीक्षण किया गया, जिसने पाया कि याची उस खनन क्षेत्र, जिसका पट्टा उसे प्रदान किया गया है, द्वारा आच्छादित क्षेत्र के बाहर के क्षेत्र से भी ग्रेनाइट खनिज के अप्राधिकृत उत्खनन में अंतर्वलित है और तद्नुसार पंचनामा तैयार किया गया । खनन अभियंता ने याची को तारीख 8 अगस्त, 2011 की सूचना यह दर्शित करने के लिए जारी की कि क्यों न उसके विरुद्ध 1986 के नियम के नियम 48 के अधीन कार्यवाही आरंभ की जाए । खान का निरीक्षण खनन अभियंता द्वारा याची के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में तारीख 22 जुलाई, 2011 को पुन: किया गया । तत्पश्चात्, खनन अभियंता ने तारीख 13 जनवरी, 2012 की एक अन्य सूचना द्वारा तारीख 23 जनवरी, 2012 और 24 जनवरी, 2012 को याची की उपस्थिति में स्थल के निरीक्षण का प्रस्ताव दिया । याची के अनुसार उसने तारीख 23 जनवरी, 2012 को एक आवदेन यह अभिकथित करते हुए प्रस्तुत किया था कि वह अपने निकट नातेदार की मृत्यु के कारण तारीख 23 जनवरी, 2012 और 24 जनवरी, 2012 को स्थल निरीक्षण के समय उपस्थित होने में असमर्थ है । खनन अभियंता द्वारा स्थल का निरीक्षण निर्धारित तारीख पर किया गया और स्थल निरीक्षण रिपोर्ट और पंचनामा तैयार किया गया । वे खनिज जिनका उत्खनन याची द्वारा अवैध रूप से किया गया था, की माप की गई और उसकी मात्रा 2696 वर्गमीटर पर 7488 मेट्रिक टन पाई गई । वे खनिज ब्लॉक, जिनका उत्खनन अनधिकृत रूप से किया गया स्थल पर उपलब्ध हैं और उनका कब्जा राज्य द्वारा लिया गया । याची ने उन खनिज

ब्लॉकों को निर्मुक्त किए जाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, किंतु कोई कार्रवाई नहीं हुई । अधीक्षण खनन अभियंता ने दो भिन्न निरीक्षण किए जाने के कारण उन खनिजों के संबंध में, जिनका उत्खनन अनधिकृत रूप से किया गया था, में असंगतता पाते हुए सिरोही के खनन अभियंता को पुन: पंचनामा तैयार किया और पट्टाधारक से उत्तर प्राप्त होने के पश्चात् अनुमोदन के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए निर्देशित किया । तत्पश्चात्, वह खनिज जिसका उत्खनन अनधिकृत रूप से किया गया था, की खनन अभियंता द्वारा मात्रा 1,31,04,000/- रुपए आंकी गई, जिसका अनुमोदन किया गया और याची को तारीख 13 अगस्त, 2012 की मांग की सूचना जारी की गई ।

तत्पश्चात् याची द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रत्यावेदन, जिसके द्वारा खनन अभियंता के पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यवहार के विरुद्ध शिकायत की गई थी, पर विचार करते हुए अधीक्षण खनन अभियंता ने तारीख 24 अगस्त, 2012 के आदेश द्वारा खनन अभियंता (सर्तकता) की अध्यक्षता में एक दल का गठन किया और जांच रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए निर्दिशित किया । तत्समय, सिरोही के खनन अभियंता ने याची के विरुद्ध 1,31,04,000/- रुपए की मांग करते हुए तारीख 30 अगस्त, 2012 की सूचना जारी की ।

अधीक्षण खनन अभियंता द्वारा जारी तारीख 15 अक्तूबर, 2014 के आदेश के अनुसरण में बलेसर के सहायक खनन अभियंता और फोरमैन - II ने स्वीकृत खनन पट्टा संख्या 349/90 (नया खनन पट्टा संख्या 20/10) के सीमांकन का सत्यापन किया और रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी । यह रिपोर्ट तारीख 5 दिसंबर, 2014 को प्रस्तुत की गई, जिसके द्वारा वह खनिज जिसका अवैध रूप से उत्खनन किया गया था, का मूल्य 914.76/- रुपए प्रति मेट्रिक टन पाया गया और इस खनिज की लागत रॉयल्टी का 10 गुणा

अधिरोपित करते हुए 6,40,332/- रुपए आंकी गई । खनन अभियंता ने वसूले जाने योग्य रकम, जिसका आकलन तारीख 22 जुलाई, 2011, 23 जनवरी, 2012, 19 सितंबर, 2013 और 5 दिसंबर, 2014 को किए गए तीन निरीक्षणों के आधार पर किया गया था, के संबंध में स्पष्टीकरण मांगा । ऐसा प्रतीत होता है कि याची के विरुद्ध अंततः 1,31,04,000/- रुपए की मांग का अनुमोदन कर दिया गया । इस प्रकार से सृजित की गई मांग की वैधता को याची द्वारा पुनरीक्षण प्राधिकारी के समक्ष पुनरीक्षण याचिका के माध्यम से चुनौती दी गई है, जो अभिकथित रूप से लंबित है ।

4. याचियों की ओर से उपस्थित विद्वान् काउंसेल श्री टी. एस. चम्पावत ने दलील दी कि 1957 के अधिनियम की धारा 15 राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में नियम विरचित करने के लिए सशक्त करती है, किंतु ऐसे नियम विरचित करने के लिए सशक्त नहीं करती जो, यदि कोई हो, के अतिलंघन के लिए दंडित किए जाने के लिए उपबंधित करते हों और इसलिए 1986 के नियम का नियम 48, जो अप्राधिकृत उत्खनन के बाबत अपराधों, शास्तियों और अभियोजन के लिए उपबंधित करने वाले नियम विरचित करने की शक्ति का प्रयोग करते हुए राज्य सरकार द्वारा विरचित किए गए हैं, राज्य की विधायी सक्षमता के परे हैं और इसलिए यह नियम अधिकारातीत घोषित किए जाने योग्य हैं । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1957 के अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (2) के खंड (ङ) को दृष्टि में रखते हुए केवल केंद्रीय सरकार प्रक्रिया के लिए उपबंधित करने वाले और उक्त धारा के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए विरचित किए गए नियम के किसी अतिलंघन के लिए शास्ति के अधिरोपण का तरीका उपबंधित करने वाले नियम विरचित करने के लिए सशक्त है और प्राधिकारी इस प्रकार की शास्ति अधिरोपित कर सकता है और इस प्रकार राज्य सरकार 1957 के अधिनियम की धारा 15 को दृष्टि में रखते हुए उसमें निहित शक्तियों के अतिक्रमण में नियम विरचित नहीं कर सकती ।

विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1957 के अधिनियम की धारा 21 अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयन और अधिनियम और उसके अधीन विरचित नियम के अन्यथा खनिज के अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयन, यातायात और भंडारण के लिए शास्ति अधिरोपित किए जाने के लिए उपबंधित करती है और इसलिए चूंकि इस क्षेत्र में संसद् द्वारा अधिनियमित विधि पहले से विद्यमान है, राज्य सरकार नियम विरचित करने की अपनी शक्तियों के प्रत्यायोजन का प्रयोग करते हुए नियमों के अतिक्रमण के लिए अपराध और शास्तियां उपबंधित करने वाले सारभूत उपबंध विरचित नहीं कर सकती । विद्वान् काउंसेल ने इस दलील के समर्थन में उच्चतम न्यायालय द्वारा **मैसर्स खेमकर एंड कंपनी (एजेन्सीज) प्राइवेट लिमिटेड** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से यह स्पष्टतः दर्शित होता है कि स्थल का निरीक्षण याचियों की उपस्थिति में नहीं किया गया और स्थल निरीक्षण की रिपोर्ट से भी यह प्रकट नहीं होता कि यह रिपोर्ट साक्षियों की उपस्थिति में तैयार की गई थी और इसलिए इस रिपोर्ट का अवलंब नहीं लिया जा सकता था । विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि याचियों के विरुद्ध मांग उनको सुनवाई का अवसर प्रदान किए बिना सृजित की गई और इसलिए मात्र इसी कारणवश अभिखंडित किए जाने योग्य हैं । विद्वान् काउंसेल ने न्यायालय का ध्यान अभिलेख पर उपलब्ध विभिन्न निरीक्षण रिपोर्टों और पंचनामों की ओर आकर्षित करते हुए निवेदन किया कि उन खनिजों, जिनका उत्खनन याची दशरथ सिंह (2016 की रिट याचिका संख्या 10477) द्वारा अभिकथित रूप से किया गया है, की मात्रा के संबंध में प्रकट रूप से असंगतताएं विद्यमान हैं और इसलिए वास्तविक अप्राधिकृत उत्खनन के संबंध में कोई स्पष्टीकरण दिए बिना सृजित की गई मांग विधि की दृष्टि में मान्य ठहराए जाने योग्य नहीं हैं ।

---

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1549.

5. इसके विपरीत विद्वान् अपर महाधिवक्ता श्री संदीप शाह ने निवेदन किया कि याचियों के विरुद्ध आक्षेपित मांगें उन खनिजों, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया, की लागत वसूल किए जाने के लिए की गई हैं और याचियों के विरुद्ध नियम के उपबंधों के अतिलंघन के लिए कोई दांडिक कार्रवाई आरंभ नहीं की गई है और इसलिए संपूर्ण रिट याचिका ही भ्रमपूर्ण है । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि 1957 के अधिनियम की धारा 15 की उपधारा (1) राज्य सरकार को लघु खनिजों के संबंध में और उनके साथ सहबद्ध प्रयोजनों के लिए खदानों के पट्टे, खनन के पट्टे या अन्य खनिज संबंधी रियायतें प्रदान किए जाने को विनियमित करने के लिए सशक्त करती है । विद्वान् काउंसेल ने निवेदन किया कि धारा 15 की उपधारा (1-क) के अधीन उल्लिखित विशिष्ट मामलों, जिनके संबंध में राज्य सरकार नियम विरचित कर सकती है, उन शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालती, जिनको धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार को प्रदान किया गया है और इसलिए याचियों की यह दलील कि क्या राज्य सरकार उन अपराधों के संबंध में और नियमों के अतिक्रमण या उन खनिजों, जिनको धारा 15 की उपधारा (1-क) के अधीन विनिर्दिष्ट रूप से सम्मिलित नहीं किया गया है, के अप्राधिकृत उत्खनन के लिए अपराधों और शास्तियों के संबंध में ऐसा कोई नियम विरचित करने से विवर्जित है, गुणागुण से रहित है । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने निवेदन किया कि धारा 21 की उपधारा (2) विनिर्दिष्ट रूप से उपबंधित करती है कि 1957 के अधिनियम के किसी उपबंध के अधीन विरचित नियम के अधीन यह विरचित किया जा सकता है कि उसके अतिलंघन की स्थिति में होने वाला अपराध ऐसे कारावास, जो दो वर्ष या जुर्माना, जो पांच लाख रुपए तक हो सकता है या दोनों के द्वारा दंडनीय होगा और अतिलंघन जारी रहने की स्थिति में अतिरिक्त जुर्माने, जो उस अवधि के दौरान प्रत्येक दिन 50,000/- रुपए तक हो सकता है, जिसके दौरान ऐसे प्रथम अतिलंघन के लिए दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसा अतिलंघन

जारी रहता है, द्वारा दंडनीय होगा । विद्वान् अपर महाधिवक्ता ने आगे निवेदन किया कि 1957 के अधिनियम की धारा 15 और 21 को एक साथ पढ़े जाने पर यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि राज्य सरकार को नियम 48 विरचित करने की विधायी सक्षमता प्राप्त थी । विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि धारा 21 की उपधारा (5) उपबंधित करती है कि जहां कहीं भी कोई व्यक्ति बिना किसी विधिक प्राधिकार के किसी भूमि से कोई खनिज निकालता है, तो राज्य सरकार उस व्यक्ति से भूमि से निकाले गए खनिज या जहां इस प्रकार के खनिज का पहले ही निस्तारण किया जा चुका है, उसके मूल्य की वसूली कर सकेगी और ऐसे व्यक्ति से उस अवधि के लिए, जिसके दौरान भूमि उस व्यक्ति के अधिभोग में बिना किसी विधिक प्राधिकार के थी, किराया, रॉयल्टी या कर, जैसा भी मामला हो, की वसूली कर सकती है और इस प्रकार नियम 48 के उपबंधों से स्वतंत्र रहते हुए, वह वसूली जो किया जाना ईप्सित है, बिना विधि के प्राधिकार के किया जाना नहीं कहा जा सकता । विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि यदि याचियों को उस तरीके के संबंध में शिकायत थी, जिसमें खनिज, जिसका अप्राधिकृत रूप से उत्खनन किया गया, की मात्रा और लागत का आकलन किया जाता है, तो उनको सुसंगत कानून के अंतर्गत उपलब्ध समुचित अनुतोष प्राप्त करने से नहीं रोका जा सकता था । विद्वान् काउंसेल ने आगे निवेदन किया कि याची दशरथ ने पुनरीक्षण का अनुतोष पहले ही प्राप्त कर लिया था और इसलिए याची द्वारा की जाने वाली मांग की वैधता को चुनौती देते हुए एक ही समय में दो कार्यवाहियों को इस न्यायालय द्वारा मान्य नहीं ठहराया जा सकता और रिट याचिका खारिज किए जाने योग्य है । विद्वान् काउंसेल ने आगे दलील दी कि याचियों को सूचनाएं जारी किए जाने के द्वारा सुनवाई का अवसर प्रदान किया गया और यदि उनके द्वारा इस अवसर का लाभ नहीं उठाया गया तो अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर सक्षम प्राधिकारी द्वारा की गई आक्षेपित मांग में कोई त्रुटि नहीं पाई जा सकती ।

6. हमने दोनों पक्षों द्‌वारा किए गए परस्पर विरोधी निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

7. नि:संदेह रूप से 1986 के नियम का नियम 48 अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों पर विचार करता है । अभिलेख पर उपलब्ध मांग की सूचनाओं और अन्य दस्तावेजों के परिशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि याचियों के विरुद्ध 1986 के नियम के नियम 48 के उप-नियम (5), जो उपबंधित करता है कि जहां अप्राधिकृत रूप से उत्खनन किए गए खनिज को पहले ही भेजा जा चुका है या उसका उपभोग किया जा चुका है, तो उपनियम (4) में उल्लिखित प्राधिकारी अधिभोग के अधीन भूमि पर उदग्रहणीय किराया, रॉयल्टी या कर या उस खनिज, जिसका उत्खनन किया गया और जिसका संगणन प्रचलित दर पर संदेय रॉयल्टी के दस गुणा के आधार पर किया जाएगा, के साथ खनिज की लागत वसूल कर सकते हैं ।

8. याचियों का यह पक्षकथन नहीं है कि उनके विरुद्ध 1986 के नियम के नियम 48 के उपनियम (1), (2) या (2-क) के अतिलंघन के लिए उपनियम (3) के अधीन दांडिक कार्यवाहियां आरंभ कर दी गई हैं और इसलिए 1986 के नियम के नियम 48 के वायरस को याचियों द्‌वारा इस आधार पर चुनौती दिया जाना कि राज्य सरकार द्‌वारा नियम बनाने की शक्ति का प्रयोग करते हुए विरचित उक्त नियम, जो अप्राधिकृत अधिभोग के लिए अपराधों, शास्तियों और अभियोजनों के लिए उपबंधित करता है, राज्य की विधायी सक्षमता के परे है और इसलिए अधिकारातीत (Ultra vires) घोषित किए जाने योग्य है और वास्तव में 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को याचियों द्‌वारा चुनौती दिया जाना वास्तव में आक्षेपित मांग की सूचनाओं को चुनौती देते हुए याचिकाओं में उठाए गए विवाद की परिधि के परे चला जाता है । खनिज के मूल्य की वसूली में शास्ति का तत्व अंतर्वलित नहीं होता और खनिज की वसूली या उसके मूल्य की वसूली कोई दांडिक कार्रवाई नहीं है बल्कि यह मात्र क्षतिपूर्ति की कार्यवाही है, जिसको

माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **कर्नाटक रेयर अर्थ और एक अन्य** बनाम **वरिष्ठ भूगर्भशास्त्री, खान और भूगर्भशास्त्र विभाग और एक अन्य**[1] वाले मामले में स्थिरीकृत कर दिया गया है ।

9. किसी भी परिस्थिति में, चूंकि याचियों ने 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को चुनौती दी है, इसलिए हम यह उचित समझते हैं कि इस पर विचार किया जाए ।

10. राज्य सरकार द्वारा 1986 के नियम 1957 के अधिनियम के अंतर्गत विरचित नियम के नियम 15 के अधीन प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए लघु खनिजों के संबंध में खदान अनुज्ञप्तियों, खनन पट्टों और अन्य खनिज रियायतों और उनसे सहबद्ध प्रयोजनों के लिए विरचित किए गए हैं । यह सत्य है कि नियम 15 के उपनियम (1-क) में वे मामले विनिर्दिष्ट हैं, जिनके संबंध में राज्य सरकार नियम विरचित कर सकती है, किंतु यह तब जबकि उपनियम (1-क) के अधीन विनिर्दिष्ट मामले सर्वांगीण न हों, बल्कि 1986 के नियम के नियम 15 के उपनियम (1), जो राज्य सरकार को खदान पट्टों, खनन, खनन पट्टों या अन्य खनिज रियायतें और उनसे सहबद्ध प्रयोजनों को विनियमित किए जाने के लिए नियम बनाने के लिए सशक्त करता है, के अधीन राज्य सरकार द्वारा प्रदत्त शक्तियों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना हों । निश्चित रूप से लघु खनिजों के संबंध में अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों को नियंत्रित किए जाने के प्रयोजनार्थ अंगीकृत उपाय और अप्राधिकृत रूप से उत्खनित खनिजों की लागत की वसूली प्रत्यक्षतः खदान पट्टों, खनन पट्टों या अन्य लघु रियायतें प्रदान किए जाने को विनियमित किए जाने से संबंधित होते हैं और इसलिए याचियों द्वारा दी गई दलीलें कि नियम का नियम 48, जो अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों पर विचार किए जाने के प्रयोजनार्थ है, का विधायन राज्य सरकार की विधायी सक्षमता के परे हैं, पूर्णतः गुणागुण रहित है ।

---

[1] (2004) 2 एस. सी. सी. 783.

11. यह सत्य है कि 1957 के अधिनियम की धारा 18 की उपधारा (2) का खंड (ङ) उक्त धारा के अधीन विरचित नियम के किसी नियम के अतिलंघन के लिए जुर्माना अधिरोपित किए जाने की प्रक्रिया और तरीका को विहित करता है और उस प्राधिकारी को भी विहित करता है, जो ऐसे किसी जुर्माने को अधिरोपित कर सकता है, तत्पश्चात् उक्त उपबंध किसी भी प्रकार से लघु खनिजों के संबंध में खदान पट्टे, खनन पट्टे या अन्य लघु रियायतें प्रदान किए जाने और उनके साथ सहबद्ध प्रयोजनों, जिनको ऊपर स्पष्ट किया गया है और जिनमें अवैध खनन क्रियान्वयनों को नियंत्रित करने की शक्ति भी सम्मिलित है और जो इस संबंध में विरचित किसी भी नियम के अतिक्रमण के लिए शास्ति अधिरोपित किए जाने के लिए उपबंधित करते हैं, को विनियमित करने वाले नियम विरचित करने की राज्य सरकार को प्रदत्त व्यापक शक्तियों को किसी भी प्रकार से न्यून नहीं करते ।

12. हम विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई इस दलील पर विचार करते हैं कि 1957 के अधिनियम की धारा 21 अप्राधिकृत खनन क्रियान्वयनों, अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियम के अनुसार न होकर अन्यथा रूप से खनिजों का यातायात और भंडारण किए जाने के लिए शास्ति के बाबत उपबंधित करते हैं और इसलिए इस विषय पर संसद् द्वारा अधिनियमित विधि द्वारा पहले ही क्षेत्र को आच्छादित कर लिए जाने के कारण राज्य सरकार नियम विरचित करने की अपनी प्रत्यायोजित शक्ति का प्रयोग करते हुए नियम के अतिक्रमण के लिए अपराध और शास्तियां उपबंधित किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई सारभूत उपबंध अधिनियमित नहीं कर सकती, इसलिए यह अवेक्षित किया जाता है कि धारा 21 की उपधारा (1) धारा 4 की उपधारा (1-क) या उपधारा (1) का अतिलंघन करती है, जिसके अधीन किया गया अपराध ऐसी अवधि के कारावास द्वारा दंडनीय है, जो पांच वर्ष तक विस्तारित हो सकता है और अप्राधिकृत खनन वाले क्षेत्र में पांच लाख रुपए प्रति हेक्टेयर के जुर्माने तक विस्तारित हो सकता है ।

13. धारा 4 की उपधारा (1) की आज्ञा है कि कोई भी व्यक्ति किसी क्षेत्र में कोई सर्वेक्षण, प्रस्तावित खनन या खनन क्रियान्वयन नहीं करेगा, सिवाय किसी सर्वेक्षण अनुज्ञा या प्रस्तावित अनुज्ञप्ति या जैसा भी मामला हो, के नियमों और शर्तों के अधीन और उसके अनुसार । इसी प्रकार से उपधारा (1-क) उपबंधित करती है कि कोई व्यक्ति अधिनियम और उसके अंतर्गत विरचित नियम के उपबंधों के अनुसार किसी खनिज का यातायात या भंडारण नहीं करेगा या यातायात या भंडारण का कारण नहीं बनेगा । अत: नि:संदेह रूप से अन्य बातों के साथ-साथ प्रदान किए गए खनन पट्टे के नियमों और शर्तों के अतिलंघन में किया गया खनन क्रियान्वयन और 1957 के अधिनियम और इसके अधीन विरचित नियम के उपबंधों के अधीन यथाविहित खनिजों का यातायात या भंडारण 1957 के अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (1) के अधीन दंडनीय अपराध हैं, किंतु तत्पश्चात् मात्र इस कारणवश कि खनन पट्टे के नियमों और शर्तों के अतिलंघन में खनन क्रियान्वयन को दंडनीय अपराध बनाया गया है, राज्य सरकार खनन क्रियान्वयनों को विनियमित करने के लिए अपनी नियम बनाने की शक्ति के प्रयोग और उन खनिजों, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया, की लागत वसूली और खनन क्रियान्वयनों को विनियमित किए जाने के लिए विरचित नियमों के अतिलंघन करने के लिए उपबंधित करने से वंचित नहीं होगी ।

14. वास्तविकता यह है कि धारा 21 की उपधारा (2) नियम विरचित करने वाले प्राधिकारी को उसके अतिलंघन के लिए नियम उपबंधित करने के लिए सशक्त करती है, जो कारावास की उस अवधि द्वारा दंडनीय होगा जो दो वर्ष तक विस्तारित हो सकता है या जुर्माने द्वारा दंडनीय होगा जो पांच लाख रुपए तक विस्तारित हो सकता है या दोनों के द्वारा दंडनीय होगा और यदि अतिलंघन निरंतर होता रहता है तो अतिरिक्त जुर्माने, जो प्रतिदिन, जिनके दौरान प्रथम अतिलंघन की दोषसिद्धि के पश्चात् ऐसा अतिलंघन, जो जारी रहता है, 50,000/- रुपए

तक विस्तारित हो सकता है, द्वारा दंडनीय होगा । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए धारा 48 की उपधारा (3), जो उपनियम (1), (2) या (2-क) के उपबंधों के अतिलंघन को ऐसी अवधि के कारावास द्वारा दंडनीय बनाती है, जो दो वर्ष तक विस्तारित हो सकता है या जुर्माने, जो 25,000/- रुपए तक विस्तारित हो सकता है, के द्वारा दंडनीय हो सकता है या दोनों के द्वारा दंडनीय हो सकता है, 1957 की अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (2) के उपबंधों के सामंजस्य में है ।

15. यहां पर यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि धारा 21 की उपधारा (5) के उपबंधों की आज्ञा के अनुसार, जब कभी भी कोई व्यक्ति बिना किसी विधिक प्राधिकार के किसी भूमि से किसी खनिज का उत्खनन करता है, तो राज्य सरकार ऐसे व्यक्ति से इस प्रकार से निकाले गए खनिज की वसूली कर सकती है या जहां उस खनिज का पहले ही निस्तारण किया जा चुका है, तो उसके मूल्य की वसूली कर सकती है और ऐसे व्यक्ति से उस भूमि के संबंध में किराया, रॉयल्टी या कर, जैसा भी मामला हो, की भी वसूली उस अवधि के संबंध में, जिस अवधि के दौरान भूमि उस व्यक्ति के कब्जे में बिना किसी विधिपूर्ण प्राधिकार के थीं, कर सकती है । अत: नियम 48 के उपनियम (4) के उपबंध, जो उन खनिजों के संबंध में, जिनका उत्खनन बिना किसी विधिक प्राधिकार के किया गया और जिसकी या तो रवानगी की जा चुकी है या जिसका उपभोग किया जा चुका है, किराया रॉयल्टी या कर के साथ लागत की वसूली के लिए उपबंधित करते हैं और यह भी 1957 की अधिनियम की धारा 21 की उपधारा (5) के उपबंधों के सामंजस्य में है ।

16. ऊपर की गई चर्चा को दृष्टि में रखते हुए 1986 के नियम के नियम 48 के अधिकार क्षेत्र को याचियों द्वारा चुनौती दिया जाना संवैधानिक रूप से विधिमान्य घोषित किए जाने योग्य हैं ।

17. इस आधार पर हम याचियों द्वारा उन खनिजों के संबंध में,

जिनका अप्राधिकृत रूप से उत्खनन किया गया, की लागत के बाबत सृजित मांग को दी गई चुनौती पर विचार करते हैं ।

18. **मिश्री खान** (2017 की रिट याचिका संख्या 14915) वाले मामले में याचियों ने 1956 के राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम के उपबंधों के अधीन मांग की वसूली भू-राजस्व के बकाए की मांग की वसूली के रूप में मांग की वसूली के लिए तारीख 17 फरवरी, 2017 की आक्षेपित सूचना द्वारा आरंभ की गई कार्यवाही की वैधता को चुनौती दी है । बलेसर के खनन अभियंता द्वारा उन खनिजों, जिनका उत्खनन अप्राधिकृत रूप से किया गया, की लागत के बाबत जारी की गई मांग, जिसका अनुमोदन जोधपुर के अधीक्षण खनन अभियंता द्वारा किया गया, को रिट याचिका में आक्षेपित भी नहीं किया गया है । इस न्यायालय के समक्ष इस बात कोई विवाद नहीं है कि सहायक खनन अभियंता द्वारा जारी की गई आक्षेपित मांग, जिसकी पुष्टि अधीक्षण खनन अभियंता द्वारा की गई, के विरुद्ध याचियों को राज्य सरकार के समक्ष 1986 के नियम के नियम 47 के अधीन पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत करने का अनुतोष उपलब्ध था । अत: याची 1986 के नियम के अधीन उपलब्ध अनुतोष को प्राप्त करने में विफल रहे और इस प्रकार जारी की गई मांग अंतिम हो चुकी है और याचियों को 1956 के राजस्थान भू-राजस्व अधिनियम (1956 का अधिनियम) के उपबंधों के अनुसार मांग की वसूली के लिए आरंभ की गई पारिणामिक कार्यवाही की वैधता को चुनौती देने की अनुज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती ।

19. निश्चित रूप से याची दशरथ सिंह (2016 की रिट याचिका संख्या 10477) ने खनन अभियंता द्वारा सृजित मांग की वैधता को और साथ ही 1956 के अधिनियम के उपबंधों के अधीन आरंभ की गई वसूली कार्यवाही को चुनौती दी है किंतु यह तथ्य शेष रह जाता है कि याची ने मांग की वैधता को चुनौती दिए जाने के प्रयोजनार्थ राज्य सरकार के समक्ष पुनरीक्षण याचिका फाइल की है, जो विचारार्थ लंबित है । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए कि याची ने मांग की वैधता को

चुनौती देते हुए सुसंगत कानून के अधीन उपलब्ध पुनरीक्षण के अनुतोष को पहले ही प्राप्त कर लिया है, इसलिए इस बात का कोई भी कारण शेष नहीं रह गया है कि उसको पहले से उपलब्ध कानूनी अनुतोष का अनदेखा करते हुए इस न्यायालय की असाधारण अधिकारिता का अवलंब लेने की अनुज्ञा क्यों प्रदान की जाए ।

20. पूर्वोक्त कारणोंवश रिट याचिका गुणागुण रहित पाई जाती है और खारिज किए जाने योग्य है ।

21. परिणामस्वरूप, 1986 के नियम के नियम 48 को संवैधानिक रूप से विधिमान्य घोषित किया जाता है । याचियों द्वारा फाइल की गई रिट याचिका को खारिज किया जाता है । यह कहना व्यर्थ होगा कि रिट याचिकाओं को खारिज किए जाने के कारण याची कानूनी अनुतोष को प्राप्त करने से या आक्षेपित मांग के विरुद्ध पहले ही उपलब्ध किए जा चुके अनुतोष का अनुसरण करने से विवर्जित नहीं होंगे । लागत के बाबत कोई आदेश पारित नहीं किया जाता ।

याचिका खारिज की गई ।

शु.

संसद् के अधिनियम

ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008

(2009 का अधिनियम संख्यांक 4)

[7 जनवरी, 2009]

नागरिकों की उनके निकटतम स्थान पर न्याय तक पहुंच उपलब्ध कराने के प्रयोजनों के लिए ग्रामीण स्तर पर ग्राम न्यायालयों की स्थापना करने और यह सुनिश्चित करने के लिए कि कोई नागरिक सामाजिक, आर्थिक या अन्य नि:शक्तता के कारण न्याय प्राप्त करने के अवसरों से वंचित तो नहीं हो रहा है, और उनसे संबंधित या उनके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के उनसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :-

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ - (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2008 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य, नागालैंड राज्य, अरुणाचल प्रदेश राज्य, सिक्किम राज्य और जनजातीय क्षेत्रों के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

स्पष्टीकरण - इस उपधारा में, "जनजातीय क्षेत्रों" पद से संविधान की छठी अनुसूची के पैरा 20 के नीचे सारणी के भाग 1, भाग 2, भाग 2क और भाग 3 में क्रमशः असम राज्य, मेघालय राज्य, त्रिपुरा राज्य और मिजोरम राज्य के विनिर्दिष्ट क्षेत्र अभिप्रेत हैं ।

(3) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा, जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना द्वारा, नियत करे और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए भिन्न-भिन्न तारीखें नियत की जा सकेंगी ।

2. परिभाषाएं – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "ग्राम न्यायालय" से धारा 3 की उपधारा (1) के अधीन स्थापित न्यायालय अभिप्रेत है ;

(ख) "ग्राम पंचायत" से संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ग्राम स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की कोई संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(ग) "उच्च न्यायालय" से अभिप्रेत है, –

(i) किसी राज्य के संबंध में, उस राज्य का उच्च न्यायालय ;

(ii) उस संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, जिसके लिए किसी राज्य के उच्च न्यायालय की अधिकारिता विधि द्वारा विस्तारित की गई है, वह उच्च न्यायालय ;

(iii) किसी अन्य संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में, उस राज्यक्षेत्र के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय से भिन्न, दांडिक अपील का सर्वोच्च न्यायालय ;

(घ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना अभिप्रेत है और "अधिसूचित" पद का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ङ) "न्यायाधिकारी" से धारा 5 के अधीन नियुक्त ग्राम न्यायालय का पीठासीन अधिकारी अभिप्रेत है ;

(च) "मध्यवर्ती स्तर पर पंचायत" से संविधान के भाग 9 के उपबंधों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों के लिए संविधान के अनुच्छेद 243ख के अधीन मध्यवर्ती स्तर पर गठित स्वायत्त शासन की संस्था (किसी भी नाम से ज्ञात हो) अभिप्रेत है ;

(छ) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ज) "अनुसूची" से इस अधिनियम से संलग्न अनुसूची अभिप्रेत है ;

(झ) संघ राज्यक्षेत्र के संबंध में "राज्य सरकार" से संविधान के अनुच्छेद 239 के अधीन नियुक्त उसका प्रशासक अभिप्रेत है ;

(ञ) उन शब्दों और पदों के जो, इसमें प्रयुक्त हैं और परिभाषित नहीं हैं किंतु सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में परिभाषित हैं वही अर्थ होंगे, जो उन संहिताओं में हैं ।

अध्याय 2

ग्राम न्यायालय

3. ग्राम न्यायालयों की स्थापना – (1) राज्य सरकार, इस अधिनियम द्वारा ग्राम न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता और शक्तियों का प्रयोग करने के प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा, जिले में मध्यवर्ती स्तर पर प्रत्येक पंचायत या मध्यवर्ती स्तर पर निकटवर्ती पंचायतों के समूह के लिए या जहां किसी राज्य में मध्यवर्ती स्तर पर कोई पंचायत नहीं है वहां निकटवर्ती ग्राम पंचायतों के समूह के लिए एक या अधिक ग्राम न्यायालय स्थापित कर सकेगी ।

(2) राज्य सरकार, उच्च न्यायालय से परामर्श करने के पश्चात्, अधिसूचना द्वारा, ऐसे क्षेत्र की स्थानीय सीमाएं विनिर्दिष्ट करेगी, जिस पर ग्राम न्यायालय की अधिकारिता विस्तारित की जाएगी और किसी भी समय, ऐसी सीमाओं को बढ़ा सकेगी, कम कर सकेगी या परिवर्तित कर सकेगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन स्थापित ग्राम न्यायालय तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन स्थापित न्यायालयों के अतिरिक्त होंगे ।

4. ग्राम न्यायालय का मुख्यालय – प्रत्येक ग्राम न्यायालय का मुख्यालय उस मध्यवर्ती पंचायत के मुख्यालय पर जिसमें ग्राम न्यायालय स्थापित है या ऐसे अन्य स्थान पर अवस्थित होगा, जो राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

5. न्यायाधिकारी की नियुक्ति – राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के परामर्श से, प्रत्येक ग्राम न्यायालय के लिए एक न्यायाधिकारी की नियुक्ति करेगी ।

6. न्यायाधिकारी की नियुक्ति के लिए अर्हताएं – (1) कोई व्यक्ति न्यायाधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए तभी अर्हित होगा, जब वह प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में नियुक्त किए जाने के लिए पात्र हो ।

(2) न्यायाधिकारी की नियुक्ति करते समय, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, स्त्रियों तथा ऐसे अन्य वर्गों या समुदायों के सदस्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाएगा, जो राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट किए जाएं ।

7. न्यायाधिकारी का वेतन, भत्ते और सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें – न्यायाधिकारी को संदेय वेतन और अन्य भत्ते तथा उसकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट को लागू हों ।

8. न्यायाधिकारी का उन कार्यवाहियों में पीठासीन न होना, जिनमें वह हितबद्ध है – न्यायाधिकारी ग्राम न्यायालय की उन कार्यवाहियों में पीठासीन नहीं होगा जिनमें उसका कोई हित है या वह विवाद की विषय-वस्तु में अन्यथा अंतर्वलित है या उसका ऐसी कार्यवाहियों के किसी पक्षकार से संबंध है और ऐसे मामले में न्यायाधिकारी मामले को, किसी अन्य न्यायाधिकारी को अंतरित किए जाने के लिए, यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय को भेजेगा ।

9. न्यायाधिकारी का ग्रामों में चल न्यायालय लगाना और कार्यवाहियां करना – (1) न्यायाधिकारी अपनी अधिकारिता के अंतर्गत आने वाले ग्रामों का आवधिक रूप से दौरा करेगा और ऐसे किसी स्थान पर विचारण या कार्यवाहियां करेगा, जिसे वह उस स्थान के निकट समझता है जहां पक्षकार सामान्यतया निवास करते हैं या जहां संपूर्ण वाद हेतुक या उसका कोई भाग उद्भूत हुआ था :

परन्तु जहां ग्राम न्यायालय अपने मुख्यालय से बाहर चल न्यायालय लगाने का विनिश्चय करता है वहां वह उस तारीख और स्थान के बारे में, जहां वह चल न्यायालय लगाने का प्रस्ताव करता है, व्यापक प्रचार करेगा ।

(2) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को सभी सुविधाएं प्रदान करेगी

जिनके अंतर्गत उसके मुख्यालय से बाहर विचारण या कार्यवाहियां करते समय न्यायाधिकारी द्वारा चल न्यायालय लगाने के लिए वाहनों की व्यवस्था भी है ।

10. ग्राम न्यायालय की मुद्रा – इस अधिनियम के अधीन स्थापित प्रत्येक ग्राम न्यायालय, न्यायालय की मुद्रा का उपयोग ऐसे आकार और विमाओं में करेगा जो उच्च न्यायालय द्वारा राज्य सरकार के अनुमोदन से विहित की जाएं ।

अध्याय 3

ग्राम न्यायालय की अधिकारिता, शक्तियां और प्राधिकार

11. ग्राम न्यायालय की अधिकारिता – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय सिविल और दांडिक, दोनों अधिकारिता का प्रयोग इस अधिनियम के अधीन उपबंधित रीति में और सीमा तक करेगा ।

12. दांडिक अधिकारिता – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय किसी परिवाद पर या पुलिस रिपोर्ट पर किसी अपराध का संज्ञान ले सकेगा और –

(क) पहली अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा ; और

(ख) उस अनुसूची के भाग 2 में सम्मिलित अधिनियमितियों के अधीन विनिर्दिष्ट सभी अपराधों का विचारण करेगा और अनुतोष, यदि कोई हो, प्रदान करेगा ।

(2) उपधारा (1) के उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ग्राम न्यायालय उन राज्य अधिनियमों के अधीन ऐसे सभी अपराधों का भी विचारण करेगा या ऐसा अनुतोष प्रदान करेगा, जो धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

13. सिविल अधिकारिता – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के

होते हुए भी और उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय की निम्नलिखित अधिकारिता होगी, –

(क) दूसरी अनुसूची के भाग 1 में विनिर्दिष्ट वर्गों के विवादों के अधीन आने वाले सिविल प्रकृति के सभी वादों या कार्यवाहियों का विचारण करना ;

(ख) उन सभी वर्गों के दावों और विवादों का विचारण करना, जो धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा और उक्त धारा की उपधारा (3) के अधीन राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाएं ।

(2) ग्राम न्यायालय की धनीय सीमाएं वे होंगी, जो उच्च न्यायालय द्वारा, राज्य सरकार के परामर्श से समय-समय पर अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट की जाएं ।

14. अनुसूचियों का संशोधन करने की शक्ति – (1) जहां केन्द्रीय सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है, वहां वह अधिसूचना द्वारा, यथास्थिति, पहली अनुसूची के भाग 1 या भाग 2 अथवा दूसरी अनुसूची के भाग 2 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे लोप कर सकेगी और वह तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(2) उपधारा (1) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखी जाएगी ।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह उच्च न्यायालय के परामर्श से अधिसूचना द्वारा, पहली अनुसूची के भाग 3 या दूसरी अनुसूची के भाग 3 में किसी मद को जोड़ सकेगी या उससे किसी ऐसी मद का लोप कर सकेगी, जिसकी बाबत राज्य विधान-मंडल विधियां बनाने के लिए सक्षम है और तदुपरि, यथास्थिति, पहली अनुसूची या दूसरी अनुसूची तद्नुसार संशोधित की गई समझी जाएगी ।

(4) उपधारा (3) के अधीन जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखी जाएगी ।

15. परिसीमा – (1) परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय वादों को लागू होंगे ।

(2) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 36 के उपबंध ग्राम न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराधों के संबंध में लागू होंगे ।

16. लंबित कार्यवाहियों का अंतरण – (1) यथास्थिति, जिला न्यायालय या सेशन न्यायालय ऐसी तारीख से, जो उच्च न्यायालय द्वारा अधिसूचित की जाए, अपने अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष लंबित सभी सिविल या दांडिक मामलों को, ऐसे मामलों का विचारण या निपटारा करने के लिए सक्षम ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने विवेकानुसार उन मामलों का या तो पुनःविचारण कर सकेगा या उन पर उस प्रक्रम से आगे कार्यवाही कर सकेगा, जिस पर वे उसे अंतरित किए गए थे ।

17. अनुसचिवीय अधिकारियों के कर्तव्य – (1) राज्य सरकार, ग्राम न्यायालय को उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करने के लिए अपेक्षित अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों की प्रकृति और प्रवर्गों का अवधारण करेगी और ग्राम न्यायालय को उतने अधिकारी और अन्य कर्मचारी उपलब्ध कराएगी, जितने वह ठीक समझे ।

(2) ग्राम न्यायालय के अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा की अन्य शर्तें वे होंगी जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

(3) ग्राम न्यायालय के अधिकारी और अन्य कर्मचारी ऐसे कर्तव्यों का निर्वहन करेंगे जो, समय-समय पर, न्यायाधिकारी द्वारा उन्हें समनुदेशित किए जाएं ।

अध्याय 4

दांडिक मामलों में प्रक्रिया

18. दांडिक विचारण में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय संहिता

के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू होंगे और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट का न्यायालय समझा जाएगा ।

19. ग्राम न्यायालय द्‌वारा संक्षिप्त विचारण प्रक्रिया का अपनाया जाना – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 260 की उपधारा (1) या धारा 262 की उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय अपराधों का विचारण उक्त संहिता के अध्याय 21 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार संक्षिप्त रूप में करेगा और उक्त संहिता की धारा 262 की उपधारा (1) तथा धारा 263 से धारा 265 के उपबंध, जहां तक हो सके, ऐसे विचारण को लागू होंगे ।

(2) जब संक्षिप्त विचारण के दौरान न्यायाधिकारी को यह प्रतीत हो कि मामले की प्रकृति ऐसी है कि उसका संक्षिप्त विचारण करना अवांछनीय है तो न्यायाधिकारी ऐसे किसी साक्षी को पुनः बुलाएगा, जिसकी परीक्षा हो चुकी हो और दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन उपबंधित रीति में मामले की पुनः सुनवाई के लिए अग्रसर होगा ।

20. ग्राम न्यायालय के समक्ष सौदा अभिवाक्त – अपराध में अभियुक्त व्यक्ति उस ग्राम न्यायालय में, जिसमें ऐसे अपराध का विचारण लंबित है, सौदा अभिवाक् के लिए आवेदन फाइल कर सकेगा और ग्राम न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 21क के उपबंधों के अनुसार मामले का निपटारा करेगा ।

21. ग्राम न्यायालय में मामलों का संचालन और पक्षकारों को विधिक सहायता – (1) सरकार की ओर से ग्राम न्यायालय में दांडिक मामलों का संचालन करने के प्रयोजन के लिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 25 के उपबंध लागू होंगे ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के समक्ष दांडिक कार्यवाही में परिवादी अभियोजन के मामले को प्रस्तुत करने के लिए ग्राम न्यायालय की इजाजत से अपने खर्चे पर अपनी पसंद के किसी अधिवक्ता को नियुक्त कर सकेगा ।

(3) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) की धारा 6 के अधीन गठित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरण, अधिवक्ताओं का एक पैनल तैयार करेगा और उनमें से कम-से-कम दो को प्रत्येक ग्राम न्यायालय के साथ लगाए जाने के लिए समनुदेशित करेगा, जिससे कि ग्राम न्यायालय द्वारा उनकी सेवाएं अधिवक्ता की नियुक्ति करने में असमर्थ रहने वाले अभियुक्त को उपलब्ध कराई जा सकें ।

22. निर्णय का सुनाया जाना – (1) प्रत्येक विचारण में निर्णय, न्यायाधिकारी द्वारा विचारण के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(2) ग्राम न्यायालय अपने निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को तत्काल नि:शुल्क प्रदान करेगा ।

अध्याय 5

सिविल मामलों में प्रक्रिया

23. सिविल कार्यवाहियों में अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव – इस अधिनियम के उपबंध, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे, किंतु इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, संहिता के उपबंध, जहां तक वे इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत नहीं हैं, ग्राम न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों को लागू और संहिता के उक्त उपबंधों के प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय समझा जाएगा ।

24. सिविल विवादों में विशेष प्रक्रिया – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, इस अधिनियम के अधीन प्रत्येक वाद, दावा या विवाद ग्राम न्यायालय में ऐसे प्ररूप में, ऐसी रीति में और एक सौ रुपए से अनधिक की ऐसी फीस के साथ, जो उच्च न्यायालय द्वारा, समय-समय पर, राज्य सरकार के परामर्श से विहित की जाए, आवेदन करके संस्थित किया जाएगा ।

(2) जहां कोई वाद, दावा या विवाद सम्यक् रूप से संस्थित किया

गया है, वहां ग्राम न्यायालय द्‌वारा उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन की प्रति के साथ विरोधी पक्षकार को ऐसी तारीख तक, जो समनों में विनिर्दिष्ट की जाए, हाजिर होने और दावे का उत्तर देने के लिए समन जारी किए जाएंगे और उनकी तामील ऐसी रीति में की जाएगी जो उच्च न्यायालय द्‌वारा विहित की जाए ।

(3) विरोधी पक्षकार द्‌वारा अपना लिखित कथन फाइल कर दिए जाने के पश्चात्, ग्राम न्यायालय सुनवाई के लिए तारीख नियत करेगा और सभी पक्षकारों को व्यक्तिगत रूप से या अपने अधिवक्ताओं के माध्यम से हाजिर होने की सूचना देगा ।

(4) सुनवाई के लिए नियत तारीख को, ग्राम न्यायालय दोनों पक्षकारों की उनके अपने-अपने प्रतिविरोधों के संबंध में सुनवाई करेगा और जहां विवाद में कोई साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित नहीं है वहां निर्णय सुनाएगा और ऐसे मामले में जहां साक्ष्य अभिलिखित करना अपेक्षित है वहां ग्राम न्यायालय आगे कार्यवाही करेगा ।

(5) ग्राम न्यायालय को निम्नलिखित की शक्ति भी होगी, –

(क) व्यतिक्रम के लिए किसी मामले को खारिज करना या एकपक्षीय कार्यवाही करना ; और

(ख) व्यतिक्रम के लिए खारिजी के ऐसे किसी आदेश या मामले की एकपक्षीय सुनवाई के लिए उसके द्‌वारा पारित किसी आदेश को अपास्त करना ।

(6) किसी ऐसे आनुषंगिक विषय के संबंध में, जो कार्यवाहियों के दौरान उत्पन्न हो, ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो वह न्याय के हित में न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे ।

(7) कार्यवाहियां, जहां तक व्यवहार्य हों, न्याय के हितों से संगत होंगी और सुनवाई दिन-प्रतिदिन के आधार पर उसके निष्कर्ष तक जारी रहेगी, जब तक कि ग्राम न्यायालय ऐसे कारणों से, जिन्हें लेखबद्ध किया जाएगा, सुनवाई को अगले दिन से परे स्थगित करना आवश्यक नहीं पाता ।

(8) ग्राम न्यायालय उपधारा (1) के अधीन किए गए आवेदन का

निपटारा उसके संस्थित किए जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर करेगा ।

(9) प्रत्येक वाद, दावे या विवाद में निर्णय ग्राम न्यायालय द्वारा सुनवाई के समाप्त होने के ठीक पश्चात् या पन्द्रह दिन से अनधिक ऐसे किसी पश्चात्वर्ती समय पर, जिसकी सूचना पक्षकारों को दी जाएगी, खुले न्यायालय में सुनाया जाएगा ।

(10) निर्णय में मामले का संक्षिप्त विवरण, अवधारण के लिए प्रश्न, उस पर विनिश्चय और ऐसे विनिश्चय के कारण अंतर्विष्ट होंगे ।

(11) निर्णय की एक प्रति दोनों पक्षकारों को निर्णय सुनाए जाने की तारीख से तीन दिन के भीतर नि:शुल्क परिदान की जाएगी ।

25. ग्राम न्यायालय की डिक्रियों और आदेशों का निष्पादन – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एक डिक्री समझा जाएगा और उसका निष्पादन ग्राम न्यायालय द्वारा सिविल न्यायालय की डिक्री के रूप में किया जाएगा और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय को सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी ।

(2) ग्राम न्यायालय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में यथा उपबंधित किसी डिक्री के निष्पादन के संबंध में प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा और वह नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों से मार्गदर्शित होगा ।

(3) डिक्री का निष्पादन या तो उस ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसने उसे पारित किया है या ऐसे किसी अन्य ग्राम न्यायालय द्वारा, जिसे निष्पादन के लिए वह भेजी गई है, किया जा सकेगा ।

26. सिविल विवादों के सुलह और समझौते के लिए प्रयास करने का ग्राम न्यायालय का कर्तव्य – (1) प्रत्येक वाद या कार्यवाही में ग्राम न्यायालय द्वारा प्रथम अवसर पर यह प्रयास किया जाएगा कि जहां मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत ऐसा करना संभव हो, वहां वह वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु के संबंध में किसी समझौते पर पहुंचने में पक्षकारों की सहायता करे, उन्हें मनाए और उनमें सुलह कराए और इस प्रयोजन के लिए ग्राम न्यायालय ऐसी प्रक्रिया अपनाएगा, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित की जाए ।

(2) जहां किसी वाद या कार्यवाही में किसी प्रक्रम पर ग्राम न्यायालय को यह प्रतीत होता है कि पक्षकारों के बीच समझौते की युक्तियुक्त संभावना है वहां ग्राम न्यायालय कार्यवाहियों को ऐसी अवधि के लिए स्थगित कर सकेगा जिसे वह ऐसा समझौता करने का प्रयास करने में उन्हें समर्थ बनाने के लिए ठीक समझे ।

(3) जहां उपधारा (2) के अधीन किसी कार्यवाही को स्थगित किया जाता है वहां ग्राम न्यायालय, अपने विवेकानुसार, पक्षकारों के बीच समझौता कराने के लिए मामले को एक या अधिक सुलहकारों को निर्देशित कर सकेगा ।

(4) उपधारा (2) द्वारा प्रदत्त शक्ति कार्यवाहियों को स्थगित करने की ग्राम न्यायालय की किसी अन्य शक्ति के अतिरिक्त होगी, न कि उसके अल्पीकरण में ।

27. सुलहकारों की नियुक्ति – (1) धारा 26 के प्रयोजनों के लिए, जिला न्यायालय, जिला मजिस्ट्रेट के परामर्श से, सुलहकारों के रूप में नियुक्ति के लिए ग्राम स्तर पर सत्यनिष्ठा रखने वाले ऐसे सामाजिक कार्यकर्ताओं के नामों का एक पैनल तैयार करेगा, जिसके पास ऐसी अर्हताएं और अनुभव हों, जो उच्च न्यायालय द्वारा विहित किए जाएं ।

(2) सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें वे होंगी, जो राज्य सरकार द्वारा विहित की जाएं ।

28. सिविल विवादों का अंतरण – अधिकारिता रखने वाला जिला न्यायालय, किसी पक्षकार द्वारा किए गए आवेदन पर या जब किसी एक ग्राम न्यायालय के पास काफी मामले लंबित हों या जब कभी वह न्याय के हित में ऐसा आवश्यक समझे, किसी ग्राम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी मामले को अपनी अधिकारिता के भीतर किसी अन्य ग्राम न्यायालय को अंतरित कर सकेगा ।

अध्याय 6

साधारणतः प्रक्रिया

29. कार्यवाहियों का राज्य की राजभाषा में होना – ग्राम न्यायालय

के समक्ष कार्यवाहियां और उसका निर्णय, जहां तक व्यवहार्य हो, अंग्रेजी भाषा से भिन्न राज्य की राजभाषाओं में से किसी एक में होंगे ।

30. भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का लागू होना – ग्राम न्यायालय साक्ष्य के रूप में ऐसी किसी रिपोर्ट, कथन, दस्तावेज, सूचना या विषय को ग्रहण कर सकेगा जो, उसकी राय में, किसी विवाद को प्रभावी रूप से निपटाने में उसकी सहायता करता हो, चाहे वह भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) के अधीन अन्यथा सुसंगत या ग्राह्य हो या नहीं ।

31. मौखिक साक्ष्य का लेखबद्ध किया जाना – ग्राम न्यायालय के समक्ष वादों या कार्यवाहियों में साक्षियों के साक्ष्य को विस्तार से लेखबद्ध करना आवश्यक नहीं होगा, किंतु न्यायाधिकारी, जैसे ही प्रत्येक साक्षी की परीक्षा अग्रसर होती है, साक्षी द्वारा दिए गए अभिसाक्ष्य के सार का ज्ञापन लेखबद्ध करेगा या लेखबद्ध कराएगा और ऐसे ज्ञापन पर साक्षी और न्यायाधिकारी द्वारा हस्ताक्षर किए जाएंगे तथा वह अभिलेख का भाग बनेगा ।

32. औपचारिक प्रकृति के साक्ष्य का शपथ-पत्र पर होना – (1) किसी व्यक्ति का साक्ष्य, जहां ऐसा साक्ष्य औपचारिक प्रकृति का है, शपथ-पत्र द्वारा दिया जा सकेगा और सभी न्यायसंगत अपवादों के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के समक्ष किसी वाद या कार्यवाही में साक्ष्य में पढ़ा जा सकेगा ।

(2) ग्राम न्यायालय, यदि वह ठीक समझे, वाद या कार्यवाही में किसी पक्षकार के आवेदन पर ऐसे किसी व्यक्ति को समन कर सकेगा और उसके शपथ-पत्र में अंतर्विष्ट तथ्यों के बारे में उसकी परीक्षा करेगा ।

अध्याय 7

अपीलें

33. दांडिक मामलों में अपील – (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, ग्राम न्यायालय के किसी निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध कोई अपील इसमें यथा उपबंधित के सिवाय नहीं होगी ।

(2) कोई अपील उस दशा में नहीं होगी जहां, –

(क) अभियुक्त व्यक्ति ने दोषी होने का अभिवाक् किया है और उसे उस अभिवाक् पर दोषसिद्ध किया गया है ;

(ख) ग्राम न्यायालय ने केवल एक हजार रुपए से अनधिक के जुर्माने का दंडादेश पारित किया है ।

(3) उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के किसी अन्य निर्णय, दंडादेश या आदेश के विरुद्ध अपील सेशन न्यायालय को होगी ।

(4) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय, दंडादेश या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर होगी :

परंतु यदि सेशन न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(5) उपधारा (3) के अधीन की गई अपील की सेशन न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(6) सेशन न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान, उस दंडादेश या आदेश के निलंबन का निदेश दे सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(7) उपधारा (5) के अधीन सेशन न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और सेशन न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

34. सिविल मामलों में अपील – (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी और

उपधारा (2) के अधीन रहते हुए, ग्राम न्यायालय के प्रत्येक निर्णय या ऐसे आदेश से, जो अंतर्वर्ती आदेश नहीं है, अपील जिला न्यायालय को होगी ।

(2) ग्राम न्यायालय द्वारा पारित किसी निर्णय या आदेश के विरुद्ध कोई अपील, –

(क) पक्षकारों की सहमति से नहीं होगी ;

(ख) जहां किसी वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य एक हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां नहीं होगी ;

(ग) जहां ऐसे वाद, दावे या विवाद की विषयवस्तु की रकम या मूल्य पांच हजार रुपए से अधिक नहीं है, वहां विधि के किसी प्रश्न के सिवाय नहीं होगी ।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक अपील ग्राम न्यायालय के निर्णय या आदेश की तारीख से तीस दिन की अवधि के भीतर की जाएगी :

परंतु यदि जिला न्यायालय का समाधान हो जाता है कि अपीलार्थी के पास तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर अपील न करने का पर्याप्त कारण था तो वह उक्त अवधि की समाप्ति के पश्चात् अपील ग्रहण कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) के अधीन की गई अपील की जिला न्यायालय द्वारा सुनवाई और ऐसी अपील का निपटारा उसके फाइल किए जाने की तारीख से छह मास के भीतर किया जाएगा ।

(5) जिला न्यायालय, अपील के निपटारे के लंबित रहने के दौरान उस निर्णय या आदेश के निष्पादन पर रोक लगा सकेगा, जिसके विरुद्ध अपील की गई है ।

(6) उपधारा (4) के अधीन जिला न्यायालय का विनिश्चय अंतिम होगा और जिला न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण नहीं होगा :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी व्यक्ति को संविधान के अनुच्छेद 32 और अनुच्छेद 226 के अधीन उपलब्ध न्यायिक उपचारों का उपभोग करने से नहीं रोकेगी ।

अध्याय 8

प्रकीर्ण

35. ग्राम न्यायालयों को पुलिस की सहायता – (1) ग्राम न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर कार्यरत प्रत्येक पुलिस अधिकारी ग्राम न्यायालय की उसके विधिपूर्ण प्राधिकार के प्रयोग में सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

(2) जब कभी ग्राम न्यायालय, अपने कृत्यों के निर्वहन में, किसी राजस्व अधिकारी या पुलिस अधिकारी या सरकारी सेवक को ग्राम न्यायालय की सहायता करने का निदेश देगा तब वह ऐसी सहायता करने के लिए आबद्ध होगा ।

36. न्यायाधिकारियों और कर्मचारियों आदि का लोक सेवक होना – न्यायाधिकारियों और ग्राम न्यायालयों के अधिकारियों तथा अन्य कर्मचारियों के बारे में, जब वे इस अधिनियम के किसी उपबंध के अनुसरण में कार्य कर रहे हैं या उनका कार्य करना तात्पर्यित है, यह समझा जाएगा कि वे भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थ के भीतर लोक सेवक हैं ।

37. ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण – उच्च न्यायालय, न्यायाधिकारी की पंक्ति से वरिष्ठ किसी न्यायिक अधिकारी को प्रत्येक छह मास में एक बार या ऐसी अन्य अवधि में, जो उच्च न्यायालय विहित करे, अपनी अधिकारिता के भीतर ग्राम न्यायालयों का निरीक्षण करने और ऐसे अनुदेश जारी करने के लिए, जो वह आवश्यक समझे, तथा उच्च न्यायालय को रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए प्राधिकृत कर सकेगा ।

38. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो उसे कठिनाई को दूर करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों :

परंतु इस धारा के अधीन कोई भी आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से तीन वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, उसके किए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

39. उच्च न्यायालय की नियम बनाने की शक्ति – (1) उच्च न्यायालय, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा, बना सकेगा ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :-

(क) धारा 10 के अधीन ग्राम न्यायालय की मुद्रा का आकार और विमाएं ;

(ख) धारा 24 की उपधारा (1) के अधीन वाद, दावा या कार्यवाही संस्थित किए जाने के लिए प्ररूप, रीति और फीस ;

(ग) धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन विरोधी पक्षकार पर तामील की रीति ;

(घ) धारा 26 की उपधारा (1) के अधीन सुलह के लिए प्रक्रिया ;

(ङ) धारा 27 की उपधारा (1) के अधीन सुलहकारों की अर्हताएं और अनुभव ;

(च) धारा 37 के अधीन ग्राम न्यायालय के निरीक्षण के लिए अवधि ।

(3) उच्च न्यायालय द्वारा जारी की गई प्रत्येक अधिसूचना राजपत्र में प्रकाशित की जाएगी ।

40. राज्य सरकार की नियम बनाने की शक्ति – (1) राज्य सरकार इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम अधिसूचना द्वारा बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, ऐसे नियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :-

(क) धारा 17 की उपधारा (2) के अधीन ग्राम न्यायालयों के

अधिकारियों और अन्य कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उनकी सेवा के अन्य निबंधन और शर्तें ;

(ख) धारा 27 की उपधारा (2) के अधीन सुलहकारों को संदेय बैठक फीस और अन्य भत्ते तथा उनके नियोजन के अन्य निबंधन और शर्तें ।

(3) इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात्, यथाशीघ्र, राज्य विधान-मंडल के समक्ष रखा जाएगा ।

पहली अनुसूची

(धारा 12 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अधीन अपराध, आदि

(i) ऐसे अपराध जो मृत्युंड, आजीवन कारावास या दो वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय नहीं है ;

(ii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379, धारा 380 या धारा 381 के अधीन चोरी, जहां चुराई गई संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iii) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 411 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को प्राप्त करना या प्रतिधारित करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(iv) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 414 के अधीन, चुराई गई संपत्ति को छुपाने या उसके व्ययन में सहायता करना, जहां ऐसी संपत्ति का मूल्य बीस हजार रुपए से अधिक नहीं है ;

(v) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 454 और धारा 456 के अधीन अपराध ;

(vi) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 504 के अधीन

शांति भंग कराने को प्रकोपित करने के आशय से अपमान और धारा 506 के अधीन ऐसी अवधि के, जो दो वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से या जुर्माने से या दोनों से दंडनीय आपराधिक अभित्रास ;

(vii) पूर्वोक्त अपराधों में से किसी का दुष्प्रेरण ;

(viii) पूर्वोक्त अपराधों में से कोई अपराध करने का प्रयत्न, जब ऐसा प्रयत्न अपराध हो ।

भाग 2

अन्य केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(i) ऐसे किसी कार्य द्वारा गठित कोई अपराध, जिसकी बाबत पशु अतिचार अधिनियम, 1871 (1871 का 1) की धारा 20 के अधीन परिवाद किया जा सकेगा ;

(ii) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) ;

(iii) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) ;

(iv) सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 (1955 का 22) ;

(v) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन पत्नियों, बालकों और माता-पिता के भरण-पोषण के लिए आदेश ;

(vi) बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976 (1976 का 19) ;

(vii) समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 (1976 का 25) ;

(viii) घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 (2005 का 43) ।

भाग 3

राज्य अधिनियमों के अधीन अपराध और अनुतोष

(राज्य सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

दूसरी अनुसूची

(धारा 13 और धारा 14 देखिए)

भाग 1

ग्राम न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर सिविल प्रकृति के वाद

(i) **सिविल विवाद** :

(क) संपत्ति क्रय करने का अधिकार ;

(ख) सामान्य चरागाहों का उपयोग ;

(ग) सिंचाई सरणियों से जल लेने का विनियमन और समय ;

(ii) **संपत्ति विवाद** :

(क) ग्राम और फार्म हाउस (कब्जा) ;

(ख) जलसरणियां ;

(ग) कुएं या नलकूप से जल लेने का अधिकार ;

(iii) **अन्य विवाद :**

(क) मजदूरी संदाय अधिनियम, 1936 (1936 का 4) के अधीन दावे ;

(ख) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 (1948 का 11) के अधीन दावे ;

(ग) व्यापार संव्यवहार या साहूकारी से उद्भूत धन संबंधी वाद ;

(घ) भूमि पर खेती में भागीदारी से उद्भूत विवाद ;

(ङ) ग्राम पंचायतों के निवासियों द्वारा वन उपज के उपयोग के संबंध में विवाद ।

भाग 2

केन्द्रीय सरकार द्वारा धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन अधिसूचित केन्द्रीय अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(केंद्रीय सरकार द्वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

भाग 3

राज्य सरकार द्‌वारा धारा 14 की उपधारा (3) के अधीन अधिसूचित राज्य अधिनियमों के अधीन दावे और विवाद

(राज्य सरकार द्‌वारा अधिसूचित किए जाने वाले)

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रयार्थ उपलब्ध पाठ्य पुस्तकों की सूची

क्रम सं.	पुस्तक का नाम, लेखक का नाम एवं प्रकाशन वर्ष (संस्करण)	पृष्ठ सं.	पुस्तक की मूल मुद्रित कीमत (रुपयों में)	विशेष छूट के पश्चात् पुस्तक की कीमत (रुपयों में)
1.	अन्तर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय – डा. एस. सी. खरे – 1996	273	115	29.00
2.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय) – विधि साहित्य प्रकाशन – 2000	209	225	57.00
3.	विधि शास्त्र – डा. शिवदत्त शर्मा – 2004	501	580	290.00
4.	मानव अधिकार – डा. शिवदत्त शर्मा – 2006	340	120	60.00
5.	निर्णय लेखन – न्या. भगवती प्रसाद बेरी – 2019	190	175	–

अन्य महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. विधि शब्दावली	सातवां संस्करण, 2015	कीमत रु. 375/-
2. निर्वाचन विधि निर्देशिका (भाग-1 तथा भाग-2)	नवीनतम संस्करण, 2019	कीमत रु. 1,900/-
3. भारत का संविधान (सिंधी भाषा में)	1998	कीमत रु. 45/-
4. बहुभाषी संविधान शब्दावली	1986	कीमत रु. 12/-

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

Website : www.lawmin.nic.in
Email : am.vsp-molj@gov.in

Cover-IV

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – **उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका** का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के चयनित क्रमशः सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका को उपादेय और ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए प्रिवी कौंसिल के निर्णयों को भी समाविष्ट किया जा रहा है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत क्रमशः ₹ 2,100/-, ₹ 1,300/- और ₹ 1,300/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें । साथ ही यह भी अवगत कराया जाता है कि केन्द्रीय अधिनियमों, विधि शब्दावली, विधि पत्रिकाओं और अन्य विधि प्रकाशनों को आन लाइन **https://bharatkosh.gov.in/product/ product** पर प्राप्त किया जा सकता है ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विक्रेता : सहायक प्रबंधक, कारबार अनुभाग, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय, विधायी विभाग, आई. एल. आई. बिल्डिंग, भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 । दूरभाष : 011-23385259, 23387589, फैक्स : 011-23387589, ई-मेल : am.vsp-molj@gov.in